मंटो

ई बुक के रूप में

साहित्यशिल्पी के पाठकों को अनुपम भेंट

मंटो का जन्म 11 मई 1912 को अमृतसर के एक पुश्तैनी बैरिस्टर परिवार में हुआ था। सआदत हसन के क्राँतिकारी दिमाग़ और अति संवेदनशील हृदय ने उसे मंटो बना दिया और तब जलियाँवाला बाग़ की घटना से निकल कर कहानी 'तमाशा' आयी। यह मंटो की पहली कहानी थी। धीरे-धीरे मंटो का रुझान रूसी साहित्य की ओर बढ़ने लगा। इसका प्रभाव हमें उनके रचनाकर्म में दिखाई देता है।

1948 के बाद मंटो पाकिस्तान चले गए। वहाँ उनके 14 कहानी संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें 161 कहानियाँ संग्रहित हैं। इन कहानियों में 'सियाह हाशिए', 'नंगी आवाज़ें', 'लाइसेंस', 'खोल दो', 'टिटवाल का कुत्ता', 'मम्मी', 'टोबा टेक सिंह,' 'फुंदने', 'बिजली पहलवान', 'बू', 'ठंडा गोश्त', 'काली शलवार' और 'हतक' जैसी तमाम चर्चित कहानियाँ शामिल हैं। इनमें से कहानी 'बू', 'काली शलवार', 'ऊपर-नीचे', 'दरमियाँ', 'ठंडा गोश्त', 'धुआँ' पर लंबे मुकदमे चले। हालाँकि इन मुकदमों से मंटो मानसिक रूप से परेशान ज़रूर हुए लेकिन उनके तेवर ज्यों के त्यों थे।

मंटो सिर्फ़ 42 साल जिए, लेकिन उनके 19 साल के साहित्यिक जीवन से हमें 230 कहानियाँ, 67 रेडियो नाटक, 22 शब्द चित्र और 70 लेख मिले।

तमाम ज़िल्लतें और परेशानियाँ उठाने के बाद, 18 जनवरी 1955 में मंटो ने अपने उन्हीं तेवरों के साथ, इस दुनिया को अलविदा कह दिया।

क्रम

मैं क्यों लिखता हूँ?
मैं अफ़साना क्यों कर लिखता हूँ?
मंटो का जन्मदिन और उनसे जुड़े किस्से - कृशन चंदर
साक्षात्कार - 'मज़हबी बिल्कुल नहीं थे मंटो' - निकहत पटेल
मंटो की लघुकथायें ❖ कम्युनिज्म ❖ पेशकश ❖ बेख़बरी का फ़ायदा ❖ करामात ❖ ख़बरदार ❖ हलाल और झटका ❖ घाटे का सौदा
मंटो की कहानियाँ ❖ खोल दो ❖ खुदा की कसम ❖ बू ❖ फुंदने ❖ टोबा टेक सिंह ❖ ठंडा गोश्त
कृशन चंदर के कुछ व्याकुल शब्द आवारा मंटो की मौत पर
मंटो : एक ज़ियारत प्रेमचंद गांधी

मैं क्यों लिखता हूँ?

यह एक ऐसा सवाल है कि मैं क्यों खाता हूँ... मैं क्यों पीता हूँ... लेकिन इस दृष्टि से मुख़तलिफ है कि खाने और पीने पर मुझे रुपए खर्च करने पड़ते हैं और जब लिखता हूँ तो मुझे नकदी की सूरत में कुछ खर्च करना नहीं पड़ता।

पर जब गहराई में जाता हूँ तो पता चलता है कि यह बात ग़लत है इसलिए कि मैं रुपए के बलबूते पर ही लिखता हूँ।

अगर मुझे खाना-पीना न मिले तो ज़ाहिर है कि मेरे अंग इस हालत में नहीं होंगे कि मैं कलम हाथ में पकड़ सकूँ। हो सकता है, फ़ाकाकशी की हालत में दिमाग चलता रहे, मगर हाथ का चलना तो ज़रूरी है। हाथ न चले तो ज़बान ही चलनी चाहिए। यह कितनी बड़ी ट्रेजडी है कि इंसान खाए-पिए बग़ैर कुछ भी नहीं कर सकता।

लोग कला को इतना ऊँचा रुतबा देते हैं कि इसके झंडे सातवें असमान से मिला देते हैं। मगर क्या यह हक़ीक़त नहीं कि हर श्रेष्ठ और महान चीज़ एक सूखी रोटी की मोहताज है?

मैं लिखता हूँ इसलिए कि मुझे कुछ कहना होता है। मैं लिखता हूँ इसलिए कि मैं कुछ कमा सकूँ ताकि मैं कुछ कहने के काबिल हो सकूँ।

रोटी और कला का संबंध प्रगट रूप से अजीब-सा मालूम होता है, लेकिन क्या किया जाए कि ख़ुदाबंद ताला को यही मंज़ूर है। वह ख़ुद को हर चीज़ से निरपेक्ष कहता है - यह गलत है। वह निरपेक्ष हरगिज नहीं है। इसको इबादत चाहिए। और इबादत बड़ी ही नर्म और नाज़ुक रोटी है बल्कि यूँ कहिए, चुपड़ी हुई रोटी है जिससे वह अपना पेट भरता है।

मेरे पड़ोस में अगर कोई औरत हर रोज़ खाविंद से मार खाती है और फिर उसके जूते साफ़ करती है तो मेरे दिल में उसके लिए ज़र्रा बराबर हमदर्दी पैदा नहीं होती। लेकिन जब मेरे पड़ोस में कोई औरत अपने खाविंद से लड़कर और खुदकशी की धमकी देकर सिनेमा देखने चली जाती है और मैं खाविंद को दो घंटे सख़्त परेशानी की हालत में देखता हूँ तो मुझे दोनों से एक अजीब व ग़रीब क़िस्म की हमदर्दी पैदा हो जाती है।

किसी लड़के को लड़की से इश्क हो जाए तो मैं उसे ज़ुकाम के बराबर अहमियत नहीं देता, मगर वह लड़का मेरी तवज्जो को अपनी तरफ ज़रूर खींचेगा जो जाहिर करे कि उस पर सैकड़ों लड़कियाँ जान देती हैं लेकिन असल में वह मुहब्बत का इतना ही भूखा है कि जितना बंगाल का भूख से पीड़ित बाशिंदा। इस बज़ाहिर कामयाब आशिक की रंगीन बातों में जो ट्रेजडी सिसकियाँ भरती होगी, उसको मैं अपने दिल के कानों से सुनूंगा और दूसरों को सुनाऊंगा।

चक्की पीसने वाली औरत जो दिन भर काम करती है और रात को इत्मिनान से सो जाती है, मेरे अफ़सानों की हिरोइन नहीं हो सकती। मेरी हिरोइन चकले की एक टखयाई रंडी हो सकती है। जो रात को जागती है और दिन को सोते में कभी-कभी यह ड़रावना ख्वाब देखकर उठ बैठती है कि बुढ़ापा उसके दरवाज़े पर दस्तक देने आ रहा है। उसके भारी-भारी पपोटे, जिनमें वर्षों की उचटी हुई नींद जम गई है, मेरे अफ़सानों का मौज़ूँ (विषय) बन सकते हैं। उसकी गलाजत, उसकी बीमारियाँ, उसका चिड़चिड़ापन, उसकी गालियाँ-ये सब मुझे भाती हैं - मैं उसके मुताल्लिक लिखता हूँ और घरेलू औरतों की शस्ताकलामियों, उनकी सेहत और उनकी नफ़ासत पसंदी को नज़रअंदाज कर जाता हूँ।

सआदत हसन मंटो लिखता है इसलिए कि यह खुदा जितना बड़ा अफसाना साज और शायर नहीं, यह उसकी आजिजी जो उससे लिखवाती है।

मैं जानता हूँ कि मेरी शख्सियत बहुत बड़ी है और उर्दू साहित्य में मेरा बड़ा नाम है। अगर यह ख़ुशफ़हमी न हो तो ज़िदगी और भी मुश्किल बन जाए। पर मेरे लिए यह एक तल्ख़ हक़ीकत है कि अपने मुल्क में, जिसे पाकिस्तान कहते हैं, मैं अपना सही स्थान ढूंढ नहीं पाया हूँ। यही वजह है कि मेरी रूह बेचैन रहती है। मैं कभी पागलखाने में और कभी अस्पताल में रहता हूँ।

मुझसे पूछा जाता है कि मैं शराब से अपना पीछा क्यों नहीं छुड़ा लेता? मैं अपनी जिंदगी का तीन-चौथाई हिस्सा बदपरहेजियों की भेंट चढ़ा चुका हूँ। अब तो यह हालत है- मैं कभी पागलखाने में और कभी अस्पताल में रहता हूँ।

मैं समझता हूँ कि जिंदगी अगर परहेज़ से गुजारी जाए तो एक क़ैद है। अगर वह बदपरहेजियों से गुज़ारी जाए तो भी एक क़ैद है। किसी न किसी तरह हमें इस जुराब के धागे का एक सिरा पकड़कर उधेड़ते जाना है और बस।

मैं अफ़साना क्यों कर लिखता हूँ?

मुझसे कहा गया है कि मैं यह बताऊँ कि मैं अफ़साना क्यों कर लिखता हूँ? यह 'क्यों कर' मेरी समझ में नहीं आया। 'क्यों कर' का अर्थ शब्दकोश में तो यह मिलता है - कैसे और किस तरह?

अब आपको क्या बताऊँ कि मैं अफ़साना क्योंकर लिखता हूँ। यह बड़ी उलझन की बात है। अगर में 'किस तरह' को पेशनज़र रखूँ को यह जवाब दे सकता हूँ कि अपने कमरे में सोफे पर बैठ जाता हूँ। कागज़-क़लम पकड़ता हूँ और बिस्मिल्लाह करके अफ़साना लिखना शुरू कर देता हूँ। मेरी तीन बच्चियाँ शोर मचा रही होती हैं। मैं उनसे बातें भी करता हूँ। उनकी आपसी लड़ाइयों का फैसला भी करता हूँ, अपने लिए सलाद भी तैयार करता हूँ। अगर कोई मिलने वाला आ जाए तो उसकी खातिरदारी भी करता हूँ, मगर अफ़साना लिखे जाता हूँ।

अब 'कैसे' सवाल आए तो मैं कहूँगा कि मैं वैसे ही अफ़साने लिखता हूँ जिस तरह खाना खाता हूँ, गुसल करता हूँ, सिगरेट पीता हूँ और झक मारता हूँ।

अगर यह पूछा जाए कि मैं अफ़साना 'क्यों' लिखता हूँ तो इसका जवाब हाज़िर है। मैं अफ़साना अव्वल तो इसलिए लिखता हूँ कि मुझे अफ़साना लिखने की शराब की तरह लत पड़ी हुई है।

मैं अफ़साना न लिखूं तो मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैंने कपड़े नहीं पहने हैं या मैंने गुसल नहीं किया या मैंने शराब नहीं पी।

मैं अफ़साना नहीं लिखता, हकीकत यह है कि अफ़साना मुझे लिखता है। मैं बहुत कम पढ़ा लिखा आदमी हूँ। यूँ तो मैने 20 से ऊपर किताबें लिखी हैं, लेकिन मुझे कभी कभी हैरत होती है कि यह कौन है जिसने इस कदर अच्छे अफ़साने लिखे हैं, जिन पर आए दिन मुकद्दमे चलते रहते हैं।

जब कलम मेरे हाथ में न हो तो मैं सिर्फ़ सआदत हसन होता हूँ जिसे उर्दू आती है न फ़ारसी, न अंग्रेजी, न फ्रांसीसी।

अफ़साना मेरे दिमाग में नहीं, जेब में होता है जिसकी मुझे कोई ख़बर नहीं होती। मैं अपने दिमाग पर ज़ोर देता हूँ कि कोई अफ़साना निकल आए। कहानीकार बनने की भी बहुत

कोशिश करता हूँ, सिगरेट फूँकता रहता हूँ मगर अफ़साना दिमाग से बाहर नहीं निकलता है। आख़िर थक-हार कर बाँझ औरत की तरह लेट जाता हूँ।

अनलिखे अफ़साने के दाम पेशगी वसूल कर चुका हूँ। इसलिए बड़ी कोफ़्त होती है। करवटें बदलता हूँ। उठकर अपनी चिड़ियों को दाने डालता हूँ। बच्चों का झूला झुलाता हूँ। घर का कूड़ा-करकट साफ़ करता हूँ। जूते, नन्हे मुन्हें जूते, जो घर में जहाँ-जहाँ बिखरे होते हैं, उठाकर एक जगह रखता हूँ। मगर कम्बख़्त अफ़साना जो मेरी जेब में पड़ा होता है मेरे ज़हन में नहीं उतरता-और मैं तिलमिलाता रहता हूँ।

जब बहुत ज़्यादा कोफ़्त होती है तो बाथरूम में चला जाता हूँ, मगर वहाँ से भी कुछ हासिल नहीं होता।

सुना हुआ है कि हर बड़ा आदमी गुसलखाने में सोचता है। मगर मुझे तजुर्बे से यह मालूम हुआ है कि मैं बड़ा आदमी नहीं, इसलिए कि मैं गुसलखाने में नहीं सोच सकता। लेकिन हैरत है कि फिर भी मैं हिंदुस्तान और पाकिस्तान का बहुत बड़ा कहानीकार हूँ।
मैं यही कह सकता हूँ कि या तो यह मेरे आलोचकों की खुशफ़हमी है या मैं उनकी आँखों में धूल झोंक रहा हूँ। उन पर कोई जादू कर रहा हूँ।

माफ़ कीजिएगा, मैं गुसलखाने में चला गया। किस्सा यह है कि मैं खुदा को हाज़िर-नाज़िर रखकर कहता हूँ कि मुझे इस बारे में कोई इल्म नहीं कि मैं अफसाना क्यों कर लिखता हूँ और कैसे लिखता हूँ।

अक्सर ऐसा हुआ है कि जब मैं लाचार हो गया हूँ तो मेरी बीवी, जो संभव है यहाँ मौजूद है, आई और उसने मुझसे कहा - आप सोचिए नहीं, कलम उठाइए और लिखना शुरू कर दीजिए। मैं इसके कहने पर कलम या पैंसिल उठाता हूँ और लिखना शुरू कर देता हूँ- दिमाग बिल्कुल ख़ाली होता है लेकिन जेब भरी होती है, खुद-ब-खुद कोई अफसाना उछलकर बाहर आ जाता है। मैं खुद को इस दृष्टि से कहानीकार, नहीं, जेबकतरा समझता हूँ जो अपनी जेब खुद ही काटता है और आपके हवाले कर देता हूँ - मुझ जैसा भी बेवकूफ़ दुनिया में कोई और होगा?

मंटो का जन्मदिन और उनसे जुड़े किस्से - कृशन चंदर

मंटो का जन्मदिन

पहला किस्सा

मंटो के पास टाइपराइटर था और मंटो अपने तमाम ड्रामे इसी तरह लिखता था कि काग़ज़ को टाइपराइटर पर चढ़ा कर बैठ जाता था और टाइप करना शुरू कर देता था। मंटो का ख्याल है कि टाइपराइटर से बढ़कर प्रेरणा देने वाली दूसरी कोई मशीन दुनिया में नहीं है। शब्द गढ़े-गढ़ाये मोतियों की आब लिए हुए, साफ़-सुथरे मशीन से निकल जाते हैं। क़लम की तरह नहीं कि निब घिसी हुई है तो रोशनाई कम है या काग़ज़ इतना पतला है कि स्याही उसके आर-पार हो जाती है या खुरदरा है और स्याही फैल जाती है। एक लेखक के लिए टाइपराइटर उतना ही ज़रूरी है जितना पति के लिए पत्नी। और एक उपेन्द्र नाथ अश्क और किशन चन्दर है कि क़लम घिस-घिस किए जा रहे है। "अरे मियाँ, कहीं अज़ीम अंदब की तखलीक़ (महान साहित्य का सृजन) आठ आने के होल्डर से भी हो सकता है। तुम गधे हो, निरे गधे।" मैं तो ख़ैर चुप रहा, पर दो-तीन दिन के बाद हम लोग क्या देखते हैं कि अश्क साहब अपने बग़ल में उर्दू का टाइपराइटर दबाये चले आ रहे है और अपने मंटो की मेज़ के सामने अपना टाइपराइटर सजा दिया और खट-खट करने लगे। "अरे, उर्दू के टाइपराइटर से क्या होता है? अँग्रेजी टाइपराइटर भी होना चाहिए। किशन, तुमने मेरा अँग्रेज़ी का टाइपराइटर देखा है? दिल्ली भर में ऐसा टाइपराइटर कहीं न होगा। एक दिन लाकर तुम्हें दिखाऊँगा।" अश्क ने इस पर न केवल अँग्रेजी का, बल्कि हिन्दी का टाइपराइटर भी ख़रीद लिया। अब जब अश्क आता तो अकसर चपरासी एक छोड़ तीन टाइपराइटर उठाये उसके पीछे दाखिल होता और अश्क मंटो के सामने से गुज़र जाता, क्योंकि मंटो के पास सिर्फ दो टाइपराइटर थे। आख़िर मंटो ने गुस्से में आकर अपना अँग्रेजी टाइपराइटर भी बेच दिया और फिर उर्दू टाइपराइटर को भी वह नहीं रखना चाहता था, पर उससे काम में थोड़ी आसानी हो जाती थी, इसलिए उसे पहले पहल नहीं बेचा - पर तीन टाइपराइटर की मार वह कब तक खाता। आख़िर उसने उर्दू का टाइपराइटर भी बेच दिया। कहने लगा, "लाख कहो, वह बात मशीन में नहीं आ सकती जो क़लम में है। काग़ज़, क़लम और दिमाग में जो रिश्ता है वह टाइपराइटर से क़ायम नहीं होता। एक तो कमबख़्त खटाख़ट शोर किए जाता है- मुसलसल, मुतवातिर- और क़लम किस रवानी से चलता है। मालूम होता है रोशनाई सीधी दिमाग़ से निकल कर काग़ज की सतह पर बह रही है। हाय, यह शेफ़र्स का क़लम किस क़दर ख़ूबसूरत है। इस नुकीला स्ट्रीमलाइन हुस्न देखो, जैसे बान्द्रा की क्रिशिचयन छोकरी।" और अश्क ने जल कर कहा, "तुम्हारा भी कोई दीन-ईमान है। कल तक टाइपराइटर की तारीफ़ करते थे। आज अपने

पास टाइपराइटर है तो क़लम की तारीफ़ करने लगे। वाह। यह भी कोई बात है। हमारे एक हजार रुपये ख़र्च हो गये।"

मंटो ज़ोर से हँसने लगा।

दूसरा किस्सा

आज से चौदह साल पहले मैंने और मंटो ने मिलकर एक फिल्मी कहानी लिखी थी, "बनजारा"। मंटो ने आज तक किसी दूसरे साहित्यकार के साथ मिलकर कोई कहानी नहीं लिखी- न उसके पहले, न उसके बाद। लेकिन वे दिन बड़ी सख्त सर्दियों के दिन थे। मेरा सूट पुराना पड़ गया था और मंटो का सूट भी पुराना पड़ गया था। मंटो मेरे पास आया और बोला- "ए किशन। नया सूट चाहता है?" मैंने कहा, हाँ। "तो चल मेरे साथ।" "कहाँ?" "बस, ज़्यादा बकवास न कर, चल मेरे साथ।" हम लोग एक डिस्ट्रीब्यूटर के पास गये। मैं वहाँ अगर कुछ कहता, तो सचमुच बकवास ही होता, इसलिए मैं ख़ामोश रहा। वह डिस्ट्रीब्यूटर फ़िल्म प्रोड़क्शन के मैदान में आना चाहता था। मंटो ने पन्द्रह बीस मिनट की बातचीत में उसे कहानी बेच दी और उससे पाँच सौ रुपये नकद ले लिये। बाहर आकर उसने मुझे ढाई सौ दिये, ढाई सौ रुपये खुद रख लिये। फिर हम लोगों ने अपने-अपने सूट के लिए बढ़िया कपड़ा खरीदा और अब्दुल गनी टेलर मास्टर की दुकान पर गये। उसे सूट जल्दी तैयार करने की ताक़ीद की। फिर सूट तैयार हो गए। पहन भी लिये गए। मगर सूट का कपड़ा दर्ज़ी को देने और सिलने के दौरान में जो समय बीता, उसमें हम काफ़ी रुपये घोल कर पी गये। चुनांचे अब्दुल ग़नी की सिलाई उधार रही और उसने हमें सूट पहनने के लिए दे दिये। मगर कई माह तक हम लोग उसका उधार न चुका सके। एक दिन मंटो और मैं कश्मीरी गेट से गुजर रहे थे कि मास्टर ग़नी ने हमें पकड़ लिया। मैंने सोचा, आज साफ-साफ बेइज़्ज़ती होगी। मास्टर ग़नी ने मंटो को गरेबान से पकड़ कर कहा, "वह 'हतक' तुमने लिखी है?" मंटो ने कहा, "लिखी है तो क्या हुआ? अगर तुमसे सूट उधार लिया है तो इसका मतलब यह नहीं कि तुम मेरी कहानी के अच्छे आलोचक भी हो सकते हो। यह गरेबान छोड़ो।" अब्दुल ग़नी के चेहरे पर एक अजीब-सी मुस्कराहट आयी। उसने मंटो का गरेबान छोड़ दिया और उसकी तरफ अजीब-सी नजरों से देखकर कहने लगा, "जा, तेरे उधार के पैसे माफ़ किये।" वह पलटकर चला गया। चंद लम्हों के लिए मंटो बिल्कुल ख़ामोश खड़ा रहा। वह इस तारीफ़ से बिल्कुल खुश नहीं हुआ। बड़ा संजीदा और दुखी और खफ़ा-ख़फ़ा सा नजर आने लगा, "साला क्या समझता है। मुझे सताता है। मैं उसकी पाई-पाई चुका दूँगा। साला समझता है 'हतक' मेरी अच्छी कहानी है। 'हतक'? 'हतक' तो मेरी सबसे बुरी कहानी है।"

साक्षात्कार - 'मज़हबी बिल्कुल नहीं थे मंटो' - निकहत पटेल

क्रांतिकारी सोच वाले सआदत हसन मंटो की बेटी कहती हैं कि वो मज़हबी बिल्कुल नहीं थे, लेकिन कहानी शुरू करने से पहले उनका 786 लिखना दिलचस्प लगता था। लेकिन उनकी क्रांतिकारी सोच और अतिसंवेदनशील लेखनी से 'मंटो' के रूप में उन्हें पूरी दुनिया में शोहरत मिली।

पैदाइशी अफसानानिगार मंटो अगर आज जीवित होते तो उनकी उम्र 97 साल (ये बात 2009 में की गयी थी) होती। पेश है उनकी बड़ी बेटी निकहत पटेल से हुई बातचीत के अंशः

- किस तरह की यादें जुड़ी हैं अब्बा जान मंटो की आपके साथ?

- बेहद अच्छी यादें हैं उनकी, हालांकि उनके साथ हमारा बहुत कम वक़्त गुज़रा। लेकिन मुझे याद है, वो बहुत प्यार करने वाले खुशमिजाज़ इंसान थे। वो हमें ही नहीं हमारे रिश्तेदारों के बच्चों को भी लाड़-दुलार किया करते थे। धुंधली सी याद है मुझे, बावर्चीखाने में खड़े हुए अपनी पसंद की डिश या पकोड़े अक्सर बनाया करते थे। तो इस तरह उनके साथ जो भी वक्त गुजरा ज़हन में आज भी है।

- उनकी ऐसी कोई बात जो आपको दिलचस्प लगती हो, जिसे आप भूल नही पाती हों?

- मैंने उन्हें कभी नमाज़ पढते नहीं देखा था। क्योंकि वह उस मायने में मज़हबी बिल्कुल नहीं थे। लेकिन उनका हर कहानी या मज़मून शुरू करने से पहले सफेह पर 786 लिखना दिलचस्प लगता था।

- मंटो साहब की कौन सी कहानियां आपको ज़्यादा अच्छी लगती हैं?

- यूँ तो उनकी सभी कहानियां अच्छी हैं लेकिन खासतौर से 'काली शलवार', 'हादसे का खात्मा' और 'बू' कहानियां अच्छी लगती हैं। 'बू' मेरी पसंदीदा कहानी है।

- मंटो का व्यक्तित्व और कहानियाँ दोनों ही विवादों में रहे हैं, लोगों की प्रतिक्रियाओं का आप पर कितना असर हुआ?

- देखिए जिस वक़्त कहानी 'बू" पर मुकदमा चल रहा था उस वक्त मैं बहुत छोटी थी। रही बात

लोगों की प्रतिक्रियाओं का हम पर असर होने की तो मैंने देखा कि उनके विरोधी कम और चाहने वाले ज़्यादा थे। इसलिए विरेधियों की बातों पर कभी गौ़र ही नहीं किया।

- विवादों को आपकी अम्मी जान ने किस तरह लिया?

- बहुत सहजता से। क्योंकि घर में मामू और फूफियों के अलावा पूरी साहित्यिक बिरादारी उनके साथ थी। इसलिए विरोध से वह कभी परेशान नहीं हुईं।

- मंटो साहब के लेखन के बारे में वह क्या सोचती थीं?

- अम्मी बताती थीं कि अब्बाजान अपनी हर कहानी और मजमून सबसे पहले उन्हें ही सुनाया करते थे। और बताते थे कि इस कहानी या मजमून का मक़सद क्या है।

- अम्मी से किस तरह का रिश्ता था मंटो साहब का?

- होश आने पर जो घर के लोगों से जाना, वह यह कि रिश्तेदारों से उनका रिश्ता मोहब्बत और दोस्ती का था। बस अम्मी से उनकी झड़प शराबनोशी को लेकर हुआ करती थी। और उस वक्त भी वह अपनी कमज़ोरी और गलतियों को मान लेते थे।

- 'मनो मिट्टी के नीचे दफन सआदत हसन मंटो आज भी यह सोचता है कि सबसे बड़ा अफसाना निगार वह है या ख़ुदा।' मंटो की इस इबारत में आपको आत्मविश्वास और चुनौती नज़र आती है या ग़ुरूर?

- मुझे तो सौ फीसदी आत्मविश्वास और साथ में चुनौती भी नज़र आती है। गुरूर तो उनमें था ही नहीं।

- अगर अब्बा जान मंटो से कोई एक बात कहनी हो, तो वो क्या होगी?

- यही कि। 'काश आपने शराबनोशी न की होती तो।।।। हमें आपके साथ ज़्यादा रहने का मौका मिला होता।।।।" बस इतना ही।

मंटो की लघुकथायें

कम्युनिज्म

वह अपने घर का तमाम जरूरी सामान एक ट्रक में लदवाकर दूसरे शहर जा रहा था कि रास्ते में लोगों ने उसे रोक लिया। एक ने ट्रक के सामान पर नजर डालते हुए कहा, ''देखो यार, किस मजे से इतना माल अकेला उड़ाये चला जा रहा है।''

सामान के मालिक ने कहा, ''जनाब माल मेरा है।''

दो तीन आदमी हंसे, ''हम सब जानते हैं।''

एक आदमी चिल्लाया, ''लूट लो! यह अमीर आदमी है, ट्रक लेकर चोरियां करता है।''

पेशकश

पहली घटना नाके के होटल के पास हुई। फौरन ही वहां एक सिपाही का पहरा लगा दिया गया। दूसरी घटना दूसरे ही रोज शाम को स्टोर के सामने हुई, सिपाही को पहली जगह से हटाकर दूसरी घटना की जगह भेज दिया गया। तीसरा केस रात बारह बजे लांड़री के पास हुआ, जब इंस्पेक्टर ने सिपाही को इस नयी जगह पर पहरा देने का हुक्म दिया तो उसने कुछ देर सोचने के बाद कहा, ''मुझे वहां खड़ा कीजिये जहां नयी घटना होने वाली है!''

बेख़बरी का फ़ायदा

लबलबी दबी - पिस्तौल से झुँझलाकर गोली बाहर निकली।

खिड़की में से बाहर झाँकनेवाला आदमी उसी जगह दोहरा हो गया।

लबलबी थोड़ी देर बाद फ़िर दबी - दूसरी गोली भिनभिनाती हुई बाहर निकली।

सड़क पर माशकी की मश्क फटी, वह औंधे मुँह गिरा और उसका लहू मश्क के पानी में हल होकर बहने लगा।

लबलबी तीसरी बार दबी - निशाना चूक गया, गोली एक गीली दीवार में जज़्ब हो गई। चौथी गोली एक बूढ़ी औरत की पीठ में लगी, वह चीख़ भी न सकी और वहीं ढेर हो गई।

पाँचवी और छठी गोली बेकार गई, कोई हलाक हुआ और न ज़ख़्मी।

गोलियाँ चलाने वाला भिन्ना गया।

दफ़्तन सड़क पर एक छोटा-सा बच्चा दौड़ता हुआ दिखाई दिया।

गोलियाँ चलानेवाले ने पिस्तौल का मुहँ उसकी तरफ़ मोड़ा।

उसके साथी ने कहा : “यह क्या करते हो?”

गोलियां चलानेवाले ने पूछा : “क्यों?”

“गोलियां तो ख़त्म हो चुकी हैं!”

“तुम ख़ामोश रहो।।।। इतने-से बच्चे को क्या मालूम?”

करामात

लूटा हुआ माल बरामद करने के लिए पुलिस ने छापे मारने शुरु किए। लोग ड़र के मारे लूटा हुआ माल रात के अंधेरे में बाहर फेंकने लगे, कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपना माल भी मौक़ा पाकर अपने से अलहदा कर दिया, ताकि क़ानूनी गिरफ़्त से बचे रहें। एक आदमी को बहुत दिक़्कत पेश आई। उसके पास शक्कर की दो बोरियाँ थी जो उसने पंसारी की दूकान से लूटी थीं। एक तो वह जूँ-तूँ रात के अंधेरे में पास वाले कुएँ में फेंक आया, लेकिन जब दूसरी उसमें डालने लगा ख़ुद भी साथ चला गया।

शोर सुनकर लोग इकट्ठे हो गये। कुएँ में रस्सियाँ डाली गईं। जवान नीचे उतरे और उस आदमी को बाहर निकाल लिया गया। लेकिन वह चंद घंटों के बाद मर गया।

दूसरे दिन जब लोगों ने इस्तेमाल के लिए उस कुएँ में से पानी निकाला तो वह मीठा था। उसी रात उस आदमी की क़ब्र पर दीए जल रहे थे।

ख़बरदार

बलवाई मालिक मकान को बड़ी मुश्किलों से घसीटकर बाहर लाए। कपड़े झाड़कर वह उठ खड़ा हुआ और बलवाइयों से कहने लगा: “तुम मुझे मार डालो, लेकिन ख़बरदार, जो मेरे रुपए-पैसे को हाथ लगाया।।।।।।।।।!”

हलाल और झटका

“मैंने उसकी शहरग पर छुरी रखी, हौले-हौले फेरी और उसको हलाल कर दिया।”
“यह तुमने क्या किया?”
“क्यों?”
“इसको हलाल क्यों किया?”
"मज़ा आता है इस तरह।"
“मज़ा आता है के बच्चे।।।।। तुझे झटका करना चाहिए था।।।। इस तरह। ”
और हलाल करनेवाले की गर्दन का झटका हो गया।

(शहरग - शरीर की सबसे बड़ी शिरा जो हृदय में मिलती है)

घाटे का सौदा

दो दोस्तों ने मिलकर दस-बीस लड़कियों में से एक चुनी और बयालीस रुपये देकर उसे ख़रीद लिया। रात गुज़ारकर एक दोस्त ने उस लड़की से पूछा : "तुम्हारा नाम क्या है?"

लड़की ने अपना नाम बताया तो वह भिन्ना गया: "हमसे तो कहा गया था कि तुम दूसरे मज़हब की हो।।।।!"

लड़की ने जवाब दिया: "उसने झूठ बोला था!"

यह सुनकर वह दौड़ा-दौड़ा अपने दोस्त के पास गया और कहने लगा: "उस हरामज़ादे ने हमारे साथ धोखा किया है।।।।।हमारे ही मज़हब की लड़की थमा दी।।।।।।चलो, वापस कर आएँ।।।।।!"

मंटो की कहानियाँ

खोल दो

अमृतसर से स्पेशल ट्रेन दोपहर दो बजे चली और आठ घंटों के बाद मुगलपुरा पहुंची। रास्ते में कई आदमी मारे गए। अनेक जख्मी हुए और कुछ इधर-उधर भटक गए।

सुबह दस बजे कैंप की ठंडी जमीन पर जब सिराजुद्दीन ने आंखें खोलीं और अपने चारों तरफ मर्दों, औरतों और बच्चों का एक उमड़ता समुद्र देखा तो उसकी सोचने-समझने की शक्तियां और भी बूढ़ी हो गईं। वह देर तक गंदले आसमान को टकटकी बांधे देखता रहा। यूं ते कैंप में शोर मचा हुआ था, लेकिन बूढ़े सिराजुद्दीन के कान तो जैसे बंद थे। उसे कुछ सुनाई नहीं देता था। कोई उसे देखता तो यह ख्याल करता की वह किसी गहरी नींद में गर्क है, मगर ऐसा नहीं था। उसके होशो-हवास गायब थे। उसका सारा अस्तित्व शून्य में लटका हुआ था।

गंदले आसमान की तरफ बगैर किसी इरादे के देखते-देखते सिराजुद्दीन की निगाहें सूरज से टकराईं। तेज रोशनी उसके अस्तित्व की रग-रग में उतर गई और वह जाग उठा। ऊपर-तले उसके दिमाग में कई तस्वीरें दौड़ गईं-लूट, आग, भागम-भाग, स्टेशन, गोलियां, रात और सकीना।।। सिराजुद्दीन एकदम उठ खड़ा हुआ और पागलों की तरह उसने चारों तरफ फैले हुए इनसानों के समुद्र को खंगालना शुरू कर दिया।

पूरे तीन घंटे बाद वह 'सकीना-सकीना' पुकारता कैंप की खाक छानता रहा, मगर उसे अपनी जवान इकलौती बेटी का कोई पता न मिला। चारों तरफ एक धांधली-सी मची थी। कोई अपना बच्चा ढूंढ रहा था, कोई मां, कोई बीबी और कोई बेटी। सिराजुद्दीन थक-हारकर एक तरफ बैठ गया और मस्तिष्क पर जोर देकर सोचने लगा कि सकीना उससे कब और कहां अलग हुई, लेकिन सोचते-सोचते उसका दिमाग सकीना की मां की लाश पर जम जाता, जिसकी सारी अंतड़ियां बाहर निकली हुईं थीं। उससे आगे वह और कुछ न सोच सका।

सकीना की मां मर चुकी थी। उसने सिराजुद्दीन की आंखों के सामने दम तोड़ा था, लेकिन सकीना कहां थी, जिसके विषय में मां ने मरते हुए कहा था, "मुझे छोड़ दो और सकीना को लेकर जल्दी से यहां से भाग जाओ।"

सकीना उसके साथ ही थी। दोनों नंगे पांव भाग रहे थे। सकीना का दुपट्टा गिर पड़ा था। उसे उठाने के लिए उसने रुकना चाहा था। सकीना ने चिल्लाकर कहा था "अब्बाजी छोड़िए!" लेकिन उसने दुपट्टा उठा लिया था।।।।। यह सोचते-सोचते उसने अपने कोट की उभरी हुई जेब का तरफ देखा और उसमें हाथ डालकर एक कपड़ा निकाला, सकीना का वही दुपट्टा था, लेकिन सकीना कहां थी?

सिराजुद्दीन ने अपने थके हुए दिमाग पर बहुत जोर दिया, मगर वह किसी नतीजे पर न पहुंच सका। क्या वह सकीना को अपने साथ स्टेशन तक ले आया था? क्या वह उसके साथ ही गाड़ी में सवार थी? रास्ते में जब गाड़ी रोकी गई थी और बलवाई अंदर घुस आए थे तो क्या वह बेहोश हो गया था, जो वे सकीना को उठा कर ले गए?

सिराजुद्दीन के दिमाग में सवाल ही सवाल थे, जवाब कोई भी नहीं था। उसको हमदर्दी की जरूरत थी, लेकिन चारों तरफ जितने भी इनसान फंसे हुए थे, सबको हमदर्दी की जरूरत थी। सिराजुद्दीन ने रोना चाहा, मगर आंखों ने उसकी मदद न की। आंसू न जाने कहां गायब हो गए थे।

छह रोज बाद जब होश-व-हवास किसी कदर दुरुसत हुए तो सिराजुद्दीन उन लोगों से मिला जो उसकी मदद करने को तैयार थे। आठ नौजवान थे, जिनके पास लाठियां थीं, बंदूकें थीं। सिराजुद्दीन ने उनको लाख-लाख दुआऐं दीं और सकीना का हुलिया बताया, गोरा रंग है और बहुत खूबसूरत है।।। मुझ पर नहीं अपनी मां पर थी।।।उम्र सत्रह वर्ष के करीब है।।।। आंखें बड़ी-बड़ी।।। बाल स्याह, दाहिने गाल पर मोटा सा तिल।।। मेरी इकलौती लड़की है। ढूंढ लाओ, खुदा तुम्हारा भला करेगा।

खैर, रजाकार नौजवानों ने बड़े जज्बे के साथ बूढ़े, सिराजुद्दीन को यकीन दिलाया कि अगर उसकी बेटी जिंदा हुई तो चंद ही दिनों में उसके पास होगी।

आठों नौजवानों ने कोशिश की। जान हथेली पर रखकर वे अमृतसर गए। कई मर्दों और कई बच्चों को निकाल-निकालकर उन्होंने सुरक्षित स्थानों पर पहुंचाया। दस रोज गुजर गए, मगर उन्हें सकीना न मिली।

एक रोज इसी सेवा के लिए लारी पर अमृतसर जा रहे थे कि छहरटा के पास सड़क पर उन्हें एक लड़की दिखाई दी। लारी की आवाज सुनकर वह बिदकी और भागना शुरू कर दिया। रजाकारों ने मोटर रोकी और सबके-सब उसके पीछे भागे। एक खेत में उन्होंने लड़की को पकड़ लिया। देखा, तो बहुत खूबसूरत थी। दाहिने गाल पर मोटा तिल था। एक लड़के ने उससे कहा, घबराओ नहीं - क्या तुम्हारा नाम सकीना है?

लड़की का रंग और भी जर्द हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया, लेकिन जब तमाम लड़कों ने उसे दम-दिलासा दिया तो उसकी दहशत दूर हुई और उसने मान लिया कि वो सराजुद्दीन की बेटी सकीना है।

आठ रजाकार नौजवानों ने हर तरह से सकीना की दिलजोई की। उसे खाना खिलाया, दूध पिलाया और लारी में बैठा दिया। एक ने अपना कोट उतारकर उसे दे दिया, क्योंकि दुपट्टा न होने के कारण वह बहुत उलझन महसूस कर रही थी और बार-बार बांहों से अपने सीने को ढकने की कोशिश में लगी हुई थी।

कई दिन गुजर गए - सिराजुद्दीन को सकीना की कोई खबर न मिली। वह दिन-भर विभिन्न कैंपों और दफ्तरों के चक्कर काटता रहता, लेकिन कहीं भी उसकी बेटी का पता न चला। रात को वह बहुत देर तक उन रजाकार नौजवानों की कामयाबी के लिए दुआएं मांगता रहता, जिन्होंने उसे यकीन दिलाया था कि अगर सकीना जिंदा हुई तो चंद दिनों में ही उसे ढूंढ निकालेंगे।

एक रोज सिराजुद्दीन ने कैंप में उन नौजवान रजाकारों को देखा। लारी में बैठे थे। सिराजुद्दीन भागा-भागा उनके पास गया। लारी चलने ही वाली थी कि उसने पूछा - बेटा, मेरी सकीना का पता चला?

सबने एक जवाब होकर कहा, चल जाएगा, चल जाएगा। और लारी चला दी। सिराजुद्दीन ने एक बार फिर उन नौजवानों की कामयाबी की दुआ मांगी और उसका जी किसी कदर हलका हो गया।

शाम को करीब कैंप में जहां सिराजुद्दीन बैठा था, उसके पास ही कुछ गड़बड़-सी हुई। चार आदमी कुछ उठाकर ला रहे थे। उसने मालूम किया तो पता चला कि एक लड़की रेलवे लाइन के पास बेहोश पड़ी थी। लोग उसे उठाकर लाए हैं। सिराजुद्दीन उनके पीछे हो लिया। लोगों ने लड़की को अस्पताल वालों के सुपुर्द किया और चले गए।

कुछ देर वह ऐसे ही अस्पताल के बाहर गड़े हुए लकड़ी के खंबे के साथ लगकर खड़ा रहा। फिर आहिस्ता-आहिस्ता अंदर चला गया। कमरे में कोई नहीं था। एक स्ट्रेचर था, जिस पर एक लाश पड़ी थी। सिराजुद्दीन छोटे-छोटे कदम उठाता उसकी तरफ बढ़ा। कमरे में अचानक रोशनी हुई। सिराजुद्दीन ने लाश के जर्द चेहरे पर चमकता हुआ तिल देखा और चिल्लाया - सकीना!

डॉक्टर, जिसने कमरे में रोशनी की थी, ने सिराजुद्दीन से पूछा, क्या है?

सिराजुद्दीन के हलक से सिर्फ इस कदर निकल सका, जी मैं।।। जी मैं।।। इसका बाप हूं।

डॉक्टर ने स्ट्रेचर पर पड़ी हुई लाश की नब्ज टटोली और सिराजुद्दीन से कहा, खिड़की खोल दो।

सकीना के मुद्रा जिस्म में जुंबिश हुई। बेजान हाथों से उसने इज़ारबंद खोला और सलवार नीचे सरका दी।

बूढ़ा सिराजुद्दीन खुशी से चिल्लाया, जिंदा है - मेरी बेटी जिंदा है।

डॉक्टर सिर से पैर तक पसीने में गर्क हो गया।

खुदा की कसम

उधर से मुसलमान और इधर से हिंदू अभी तक आ जा रहे थे। कैंपों के कैंप भरे पड़े थे जिनमें मिसाल के तौर पर तिल धरने के लिए वाकई कोई जगह नहीं थी। लेकिन इसके बावजूद उनमें लोग ठुसे जा रहे थे। गल्ला नाकाफी है, सेहत की सुरक्षा का कोई इंतजाम नहीं, बीमारियां फैल रही हैं, इसका होश किसको था! एक अफरा-तफरी का वातावरण था।

सन 48 का आरंभ था। संभवत मार्च का महीना था। इधर और उधर दोनों तरफ रजाकारों के जरिए से अपहृत औरतों और बच्चों की बरामदगी का प्रशंसनीय काम शुरू हो चुका था। सैकड़ों मर्द, औरतें, लड़के और लड़कियां इस नेक काम में हिस्सा ले रहे थे। मैं जब उनको काम में लगे देखता तो मुझे बड़ी आश्चर्यजनक खुशी हासिल होती। यानी खुद इंसान इंसान की बुराइयों के आसार मिटाने की कोशिश में लगा हुआ था। जो अस्मतें लुट चुकी थीं, उनको और अधिक लूट - खसोट से बचाना चाहता था - किसलिए? इसलिए उसका दामन और अधिक धब्बों और दागों से भरपूर न हो? इसलिए कि वह जल्दी - जल्दी अपनी खून से लिथड़ी उंगलियां चाट ले और अपने जैसे पुरुषों के साथ दस्तरखान पर बैठकर रोटी खाए? इसलिए कि वह इंसानियत का सुई - धागा लेकर, जब एक - दूसरे आंखें बंद किए हैं, अस्मतों के चाक रफू कर दे। कुछ समझ में नहीं आता था लेकिन उन रज़ाकारों की जद्दोजहद फिर काबिले कद्र मालूम होती थी। उनको सैकड़ों मुश्किलों का सामना करना पड़ा था। हजारों बखेड़े उन्हें उठाने पड़ते थे, क्योंकि जिन्होंने औरतें और लड़कियां उठाई थीं, अस्थिर थे। आज इधर कल उधर। अभी इस मोहल्ले में, कल उस मोहल्ले में। और फिर आसपास के आदमी उनकी मदद नहीं करते थे। अजीब अजीब दास्तानें सुनने में आती थीं।

एक संपर्क अधिकारी ने मुझे बताया कि सहारनपुर में दो लड़कियों ने पाकिस्तान में अपने मां-बाप के पास जाने से इनकार कर दिया। दूसरे ने बताया कि जब जालंधर में जबर्दस्ती हमने एक लड़की को निकाला तो काबिज के सारे खानदान ने उसे यूं अलविदा कही जैसे वह उनकी बहू है और किसी दूर-दराज सफर पर जा रही है। कई लड़कियों ने मां-बाप के खौफ से रास्ते में आत्महत्या कर ली। कुछ सदमे से पागल हो चुकी थीं, कुछ ऐसी भी थी जिन्हें शराब की लत पड़ चुकी थी। उनको प्यास लगती तो पानी की बजाय शराब मांगती और नंगी - नंगी गालियां बकतीं। मैं उन बरामद की हुई लड़कियों और औरतों के बारे में सोचता तो मेरे मन में सिर्फ फूले हुए पेट उभरते। इन पेटों का क्या होगा? उनमें जो कुछ भरा है, उसका मालिक कौन बने, पाकिस्तान या हिंदुस्तान? और वह नौ महीने की बारवरदारी, उसकी उज्रत पाकिस्तान अदा करेगा या हिंदुस्तान? क्या यह सब जालिम फितरत या कुदरत के बहीखाते में दर्ज होगा?

मगर क्या इसमें कोई पन्ना खाली रह गया है? बरामद औरतें आ रही थीं, बरामद औरतें जा रही थीं। मैं सोचता था ये औरतें भगाई हुईं क्यों कहलाई जाती थीं? इन्हें अपहृत कब किया

गया है? अपहरण तो बड़ा रोमैंटिक काम है जिसमें मर्द और औरतें दोनों शामिल होते हैं। वह एक ऐसी खाई है जिसको फांदने से पहले दोनों रूहों के सारे तार झनझना उठते हैं। लेकिन यह अगवा कैसा है कि एक निहत्थी को पक़ड़ कर कोठरी में कैद कर लिया? लेकिन वह जमाना ऐसा था कि तर्क - वितर्क और फलसफा बेकार चीजें थीं। उन दिनों जिस तरह लोग गर्मियों में भी दरवाजे और खिड़कियां बंद कर सोते थे, इसी तरह मैंने भी अपने दिल - दिमाग में सब खिड़कियां दरवाजे बंद कर लिये थे। हालांकि उन्हें खुला रखने की ज्यादा जरूरत उस वक्त थी, लेकिन मैं क्या करता। मुझे कुछ सूझता नहीं था। बरामद औरतें आ रही थीं। बरामद औरतें जा रही थीं। यह आवागमन जारी था, तमाम तिजारती विशेषताओं के साथ। और पत्रकार , कहानीकार और शायर अपनी कलम उठाए शिकार में व्यस्त थे। लेकिन कहानियों और नजमों का एक बहाव था जो उमड़ा चला आ रहा था। कलमों के कदम उखड़ - उखड़ जाते थे। इतने सैद थे कि सब बौखला गए थे। एक संपर्क अधिकारी मुझसे मिला। कहने लगा, तुम क्यों गुमसुम रहते हो? मैंने कोई जवाब न दिया। उसने मुझे एक दास्तान सुनाई। अपहृत औरतों की तलाश में हम मारे - मारे फिरते हैं। एक शहर से दूसरे शहर, एक गांव से दूसरे गांव, फिर तीसरे गांव फिर चौथे। गली - गली, मोहल्ले - मोहल्ले, कूचे - कूचे। बड़ी मुश्किलों से लक्ष्य मोती हाथ आता है।

मैंने दिल में कहा, कैसे मोती ... मोती, नकली या असली?

तुम्हें मालूम नहीं हमें कितनी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है, लेकिन मैं तुम्हें एक बात बताने वाला था। हम बॉर्डर के इस पार सैकड़ों फेरे कर चुके हैं। अजीब बात है कि मैंने हर फेरे में एक बुढ़िया को देखा। एक मुसलमान बुढ़िया को - अधेड़ उम्र की थी। पहली बार मैंने उसे जालंधर में देखा था - परेशान, खाली दिमाग, वीरान आंखें, गर्द व गुबार से अटे हुए बाल, फटे हुए कपड़े। उसे तन का होश था न मन का। लेकिन उसकी निगाहों से यह जाहिर था कि किसी को ढूंढ रही है। मुझे बहन ने बताया कि यह औरत सदमे के कारण पागल हो गई है। पटियाला की रहने वाली है। इसकी इकलौती लड़की थी जो इसे नहीं मिलती। हमने बहुत जतन किए हैं उसे ढूंढने के लिए मगर नाकाम रहे हैं। शायद दंगों में मारी गई है, मगर यह बुढ़िया नहीं मानती। दूसरी बार मैंने उस पगली को सहारनपुर के बस अड्डे पर देखा। उसकी हालत पहले से कहीं ज्यादा खराब और जर्जर थी। उसके होठों पर मोटी मोटी पपड़ियां जमी थीं। बाल साधुओं के से बने थे। मैंने उससे बातचीत की और चाहा कि वह अपनी व्यर्थ तलाश छोड़ दे। चुनांचे मैंने इस मतलब से बहुत पत्थरदिल बनकर कहा, माई तेरी लड़की कत्ल कर दी गई थी। पगली ने मेरी तरफ देखा, 'कत्ल?... नहीं।' उसके लहजे में फौलादी यकीन पैदा हो गया। 'उसे कोई कत्ल नहीं कर सकता। मेरी बेटी को कोई कत्ल नहीं कर सकता। 'और वह चली गई अपनी व्यर्थ तलाश में। मैंने सोचा , एक तलाश और फिर ... । लेकिन पगली को इतना यकीन था कि उसकी बेटी पर कोई कृपाण नहीं उठ सकती। कोई तेजधार या कुंद छुरा उसकी गर्दन पर नहीं

बढ़ सकता। क्या वह अमर थी? या क्या उसकी ममता अमर थी? ममता तो खैर अमर होती है। फिर क्या वह अपनी ममता ढूंढ रही थी। क्या इसने उसे कहीं खो दिया? तीसरे फेरे पर मैंने उसे फिर देखा। अब वह बिल्कुल चीथड़ों में थी। करीब - करीब नंगी। मैंने उसे कपड़े दिए मगर उसने कुबूल न किए। मैंने उससे कहा, माई मैं सच कहता हूं, तेरी लड़की पटियाले में ही कत्ल कर दी गई थी।

उसने फिर फौलादी यकीन के साथ कहा, 'तू झूठ कहता है।'

मैंने उससे अपनी बात मनवाने की खातिर कहा, 'नहीं मैं सच कहता हूं। काफी रो - पीट लिया है तुमने। चलो मेरे साथ मैं तुम्हें पाकिस्तान ले चलूंगा।' उसने मेरी बात न सुनी और बड़बड़ाने लगी। बड़बड़ाते हुए वह एकदम चौंकी। अब उसके लहजे में यकीन फौलाद से भी ठोस था, 'नहीं मेरी बेटी को कोई कत्ल नहीं कर सकता।'

मैंने पूछा , क्यों?

बुढ़िया ने हौले - हौले कहा, 'वह खूबसूरत है। इतनी खूबसूरत कि कोई कत्ल नहीं कर सकता। उसे तमाचा तक नहीं मार सकता।'

मैं सोचने लगा, क्या वाकई वह इतनी खूबसूरत थी। हर मां की आंखों में उसकी औलाद चांद का टुकड़ा होती है। लेकिन हो सकता है वह लड़की वास्तव में खूबसूरत हो। मगर इस तूफान में कौन सी खूबसूरती है जो इंसान के खुरदरे हाथों से बची है। हो सकता है पगली इस थोथे ख्याल को धोखा दे रही हो। फरार के लाखों रास्ते हैं। दुख एक ऐसा चौक है जो अपने इर्दगिर्द लाखों बल्कि करोड़ों सड़कों का जाल बना देता है।

बॉर्डर के इस पार कई फेरे हुए। हर बार मैंने उस पगली को देखा। अब वह हड्डियों का ढांचा रह गई थई। नजर कमजोर हो गई थीं। टटोल - टटोलकर चलती थी, लेकिन उसकी तलाश जारी थी। बड़ी तल्लीनता से। उसका यकीन उसी तरह स्थिर था कि उसकी बेटी जिंदा है। इसलिए कि उसे कोई मार नहीं सकता।

बहन ने मुझसे कहा, 'इस औरत से मगजमारी फिजूल है। इसका दिमाग चल चुका है। बेहतर यही है कि तुम इसे पाकिस्तान ले जाओ और पागलखाने में दाखिल करा दो।' मैंने उचित न समझा। उसकी यह भ्रामक तलाश तो उसकी जिंदगी का एकमात्र सहारा थी। जिसे मैं उससे छीनना नहीं चाहता ता। मैं उसे एक लंबे - चौड़े पागलखाने से , जिससे वह मीलों की यात्रा तय करके अपने पांवों के आंबलों की प्यार बुझा ही थी, उठाकर एक छोटी सी चारदीवारी में कैद करना नहीं चाहता था।

आखरी बार मैंने उसे अमृतसर में देखा। उसकी दयनीय स्थिति ऐसी थी कि मेरी आंखों में आंसू आ गए। मैंने फैसला कर लिया कि उसे पाकिस्तान ले जाऊंगा और पागलखाने में दाखिल करा दूंगा। एक फरीद के चौक में खड़ी अपनी आधी अंधी आंखों से इधर - उधर देख रही थी। चौक में काफी चहलपहल थी। मैं बहन के साथ एक दुकान पर बैठा एक अपहृत लड़की के

बारे में बात कर रहा था, जिसके बारे में हमें यह सूचना मिली थी कि वह बाजार सबूनिया में एक हिंदू बनिये के घर मौजूद है। यह गुफ्तगू खत्म हुई कि मैं उठा कि उस पगली को झूठसच कहकर पाकिस्तान ले जाने के लिए तैयार करूं। तभी एक जोड़ा उधर से गुजरा। औरत ने घूंघट निकाला हुआ था। छोटा सा घूंघट। उसके साथ एक सिख नौजवान था। बड़ा छैलछबीला , तंदुरुस्त। तीखे - तीखे नक्शों वाला। जब ये दोनों उस पगली के पास से गुजरे तो नौजवान एकदम ठिठक गया। उसने दो कदम पीछे हटकर औरत का हाथ पकड़ लिया। कुछ इस अचानक तौर पर कि लड़की ने अपने छोटा सा घूंघट उठाया। लट्ठे की धुली हुई सफेद चादर के चौखटे में मुझे एक ऐसा गुलाबी चेहरा नजर आया जिसका हुस्न बयान करने में मेरी जबान लाचार है। मैं उनके बिल्कुल पास था। सिख नौजवान ने सौंदर्य की देवी से उस पगली की तरफ इशारा करते हुए धीमे से कहा, तुम्हारी मां।

लड़की ने एक पल के लिए पगली की तरफ देखा और घूंघट छोड़ दिया और सिख नौजवान का बाजू पकड़कर भींचे हुए लहजे में कहा, चलो।

और वे दोनों सड़क से जरा इधर हटकर तेजी से आगे निकल गए। पगली चिल्लाई, 'भागभरी ... भागभरी।'

वह सख्त परेशान थी। मैंने पास जाकर उससे पूछा, 'क्या बात है माई?'

वह कांप रही थी, 'मैंने उसको देखा है।। मैंने उसको देखा है।'

मैंने पूछा, 'किसे?'

उसके माथे के नीचे दो गड्ढों में उसकी आंखों के बेनूर ढेले हरकत कर रहे थे, 'अपनी बेटी को ... भागभरी को।'

मैंने फिर उससे कहा, 'वह मर - खप चुकी है माई।'

उसने चीखकर कहा, 'तुम झूठ कहते हो।'

मैंने इस बार उसे पूरा यकीन दिलाने की खातिर कहा, 'मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूं, वह मर चुकी है।'

यह सुनते ही वह पगली चौक में ढेर हो गई।

बू

बरसात के यही दिन थे। खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते इसी तरह नहा रहे थे सागवन के स्प्रिन्गदार पलंग पर, जो अब खिड़की के पास थोड़ा इधर सरका दिया गया, एक घाटन लड़की रणधीर के साथ लिपटी हुई थी।

खिड़की के पास बाहर पीपल के पत्ते रात के दुधिया अंधेरे में झुमरों की तरह थरथरा रहे थे, और शाम के समय, जब दिन भर एक अंग्रेजी अखबार की सारी खबरें और इश्तहार पढ़ने के बाद कुछ सुस्ताने के लिये वह बालकनी में आ खड़ा हुआ था तो उसने उस घाटन लड़की को, जो साथवाले रस्सियों के कारखाने में काम करती थी और बारिश से बचने के लिये इमली के पेड़ के नीचे खड़ी थी, खांस-खांसकर अपनी तरफ आकर्षित कर लिया था और उसके बाद हाथ के इशारे से ऊपर बुला लिया था।

वह कई दिनों की बेहद तनहाई से उकता गया था। विश्वयुद्ध के चलते मुम्बई की लगभग तमाम ईसाई छोकरियां, जो अमूमन सस्ते दामों में मिल जाया करती थीं, वैसी जवान औरत और कमसीन लड़की अंग्रेजी फौज में भरती हो गई थीं। उनमें से कईयों ने फोर्ट के इलाके में डांस स्कूल खोल लिये थे, वहां सिर्फ फौजी गोरों को जाने की इजाजत थी।

इन हालत के चलते रणधीर बहुत उदास हो गया था। जहां उसकी उदासी का कारण यह था कि क्रिश्चियन छोकरियां दुर्लभ हो गई थीं वहीं दुसरा यह कि फौजी गोरों के मुकाबले में कहीं ज्यदा सभ्य, पढ़ा-लिखा और खूबसूरत नौजवान होने के बावजूद रणधीर के लिये फोर्ट के लगभग तमाम दरवाजे बंद हो चुके थे, क्योंकि उसकी चमड़ी सफेद नहीं थी।

जंग के पहले रणधीर नागपाड़ा और ताजमहल होटल की कई मशहूर क्रिश्चियन छोकरियों से जिस्मानी रिश्ते कायम कर चुका था, उसे अच्छी तरह पता था कि इस किस्म के संबंधों के आधार पर वह उन क्रिश्चियन लड़कों के मुकाबले क्रिश्चियन लड़कीयों के बारे में कहीं ज्यदा जानकारी रखता था जिनसे ये छोकरियां फैशन के तौर पर रोमांस लड़ाती हैं और बाद में उन्हीं में से किसी बेवकूफ से शादी कर लेती हैं।

रणधीर ने महज हैजल से बदला लेने की खातिर उस घाटन लड़की जो अलहड़ मस्त जवानी से भरी हुई जवान लड़की थी को ऊपर बुलाया था। हैजल उसके फ्लैट के नीचे रहती थी। वह रोज सुबह वर्दी पहनकर कटे हुए बालों पर खाकी रंग की टोपी तिरछे कोण से जमा कर बाहर निकलती थी और ऎसे बांकापन से चलती थी, जैसे फुटपाथ पर चलने वाले सभी लोग टाट की तरह उसके कदमों में बिछते चले जाएंगे। रणधीर सोचता था कि आखिर क्यों वह उन क्रिश्चियन छोकरियों की तरफ इतना ज्यदा रीझा हुआ है। इस में कोई शक नहीं कि वे मनचली लड़कियां अपने जिस्म की तमाम दिखाई जा सकने वाली चीजों की नुमाइश करती हैं। किसी किस्म की झिझक महसूस किये बगैर मनचली लड़की अपने कारनामों का जिक्र कर देती हैं।

अपने बीते हुए पुराने रोमांसों का हाल सुना देती हैं। यह सब ठीक है, लेकिन किसी दूसरी जवान औरत में भी ये खूबियां हो सकती हैं।

रणधीर ने जब घाटन लड़की को इसारे से ऊपर बुलाया था तो उसे इस बात का कतई अंदाज नहीं था कि वह उसे अपने साथ सुला भी लेगा। वह तो इसके वहां आने के थोड़ी देर के बाद उसके भीगे हुए कपड़े देखकर यह शंका मन में उठी थी कि कहीं ऐसा न हो कि बेचारी को निमोनिया हो जाए। सो रणधीर ने उससे कहा था, "ये कपड़े उतार दो, सर्दी लग जाएगी।"

वह रणधीर की इस बात का मतलब समझ गई थी। उसकी आखों में शर्म के लाल डोरे तैर गए थे। फिर भी जब रणधीर ने अपनी धोती निकालकर दी तो कुछ देर सोचकर अपना लहंगा उतार दिया, जिस पर मैल भीगने के कारण और भी उभर आया था।

लहंगा उतारकर उसने एक तरफ रख दिया और अपनी रानों पर जल्दी से धोती डाल ली। फिर उसने अपनी भींची-भींची टांगों से ही चोली उतारने की कोशिश की जिसके दोनों किनारों को मिलाकर उसने एक गांठ दे रखी थी। वह गांठ उसके तंदुरुस्त सीने के नन्हे लेकिन सिमटे गड्ढे में छिप गई थी।

कुछ देर तक वह अपने घिसे हुए नाखूनों की मदद से चोली की गांठ खोलने की कोशिश करती रही जो भीगने के कारण बहुत ज्यदा मजबूत हो गई थी। जब थक हार के बैठ गई तो उसने मरठी में रनधीर से कुछ कहा, जिसका मतलब यह था, "मैं क्या करुं, नहीं निकलती।"

रणधीर उसके पास बैठ गया और गांठ खोलने लगा। जब नहीं खुली तो उसने चोली के दोनों सिरे दोनों हाथों से पकड़कर इतनी जोर का झटका दिया कि गंठ सरसराती सी फैल गई और इसी के साथ दो धड़कती हुई छातियां एकाएक उजागर हो गईं। क्षणभर के लिये रण्धीर ने सोचा कि उसके अपने हाथों से उस घाटन की लड़की के सीने पर नर्म-नर्म गुंथी हुई मिट्टी को कमा कर कुम्हार की तरह दो प्यालियों की शक्ल बना दी है।

उसकी भरी-भरी सेहतमंद उरोजों में वही धड़कन, वही गोलाई, वही गरम-गरम ठंड़क थी, जो कुम्हार के हाथ से निकले हुए ताजे बरतनों में होती है।

मटमैले रंग की उन कुंवारी और जवान औरत की उरोजों ने एक अजीब किस्म की चमक पैदा कर दी थी जो चमक होते हुए भी चमक नहीं थी। उसके सीने पर ये उभार दो दीये मालूम होते थे जो तालब के गंदेले पानी पर जल रहे होने का आभास दे रहे थे।

बरसात के यही दिन थे। खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते इसी तरह कंपकंपा रहे थे। उस घाटन लड़की के दोनों कपड़े, जो पानी से सराबोर हो चुके थे, एक गंदेले ढेर की सूरत में फर्श पर पड़े थे और वह घाटन की नंगी लड़की रणधीर के साथ चिपटी हुई थी। उसके नंगे बदन की गर्मी रणधीर के बदन में हलचल पैदा कर रही थी, जो सख्त जाड़े के दिनों मेम नाइयों के गलीज लेकिन गरम हमामों में नहाते समय महसूस हुआ करती है।

दिन भर वह रणधीर के साथ चिपटी रही। दोनों एक दूसरे के साथ गड्डमड्ड हो गए थे। उन्होंने मुश्किल से एक दो बातें की होंगी, क्योंकि जो कुछ भी कहना सुनना था, सांसों, होंठों और हाथों से तय हो रहा था। रणधीर के हाथ सारी रात उसकी नर्म-नर्म उरोजों पर हवा के झोंकों की तरह फिरते रहे। उन हवाई झोंकों से उस घाटन लड़की के बदन में एक ऎसी सरसराहट पैदा होती थी कि खुद रणधीर भी कांप उठता था।

इस कंपकंपाहट से रणधीर का पहले भी सैकड़ों बार वास्ता पड़ चुका था। वह काम वासना से भरी हुई लड़की के मजे भी बखूबी जानता था। कई लड़कियों के नर्म और नाजुक लेकिन सख्त स्तनों से अपना सीना मिलाकर वह कई रातें गुजार चुका था। वह ऎसी बिलकुल अल्हड़ लड़कियों के साथ भी रह चुका था जो उसके साथ लिपट कर घर की वे सारी बातें सुना दिया करती थीं जो किसी गैर कानों के लिये नहीं होतीं। वो ऎसी कमीनी लड़की से भी जिस्मानी रिश्ता कायम कर चुका था जो सारी मेहनत खुद करती थीं और उसे कोई तकलीफ नहीं देती थीं। उसे कई समाजिक रुप से बदचलन लड़की और बदचलन औरत का भी अनुभव था जिसे वह बहुत ही रुहानी मानता था।

लेकिन यह घाटन की लड़की, जो इमली के पेड़ के नीचे भीगी हुई खड़ी थी और जिसे उसने इशारे से ऊपर बुला लिया था, बिलकुल भिन्न किस्म की लड़की थी।

सारी रात रणधीर को उसके जिस्म से एक अजीब किस्म की बू आती रही। इस बू को, जो एक हीं समय में खुशबू थी और बदबू भी, वह सारी रात पीता रहा। उसकी बगलों से, उसकी छातियों से, उसके बालों से, उसकी चमड़ी से, उसके जवान जिस्म के हर हिस्से से यह जो बदबू भी थी और खूशबू भी, रणधीर के पूरे शरीर में बस गई थी। सारी रात वह सोचता रहा था कि यह घाटन लड़की बिलकुल करीब हो कर भी हरगिज इतनी करीब नहीं होती, अगर उसके जिस्म से यह बू न उड़ती। यह बू उसके मन-मस्तिष्क की हर सल्वट में रेंग रही थी। उसके तमाम नए-पुराने अनुभवों में रच-बस गई थी।

उस बू ने उस लड़की और रणधीर को जैसे एक-दूसरे से एकाकार कर दिया था। दोनों एक-दूसरे में समा गए थे। उन अनंत गहराईयों में उतर गए थे जहां पहुंच कर इंसान एक खालिस इंसान की संतुष्टि से सरबोर होता है। ऎसी संतुष्टि, जो क्षणिक होने पर भी अनंत थी। लगातार बदलती हुई होने पर भी द्रढ और स्थायी थी, दोनों एक ऎसा जवाब बन गए थे, जो आसमान के नीले शून्य में उड़ते रहने पर भी दिखाई देता रहे।

उस बू को, जो उस घाटन लड़की के अंग-अंग से फूट रही थी, रणधीर बखूबी समझता था, लेकिन समझे हुए भी वह इनका विश्लेषण नहीं कर सकता था। जिस तरह कभी मिट्टी पर पानी छिड़कने से सोंधी-सोंधी बू निकलती है, लेकिन नहीं, वह बू कुछ और हीं तरह की थी। उसमें लेवेंड़र और इत्र की मिलावट नहीं थी, वह बिलकुल असली थी, औरत और मर्द के शारीरिक संबंध की तरह असली और पवित्र।

रणधीर को पसीने की बू से सख्त नफरत थी। नहाने के बाद वह हमेशा बगलों वैगेरह में पाउड़र छिड़कता था या कोई ऐसी दवा इस्तेमाल करता था, जिससे वह बदबू जती रहे, लेकिन ताज्जुब है कि उसने कई बार, हां कई बार, उस घाटन लड़की की बालों भरी बगलों का चुम्मा लिया। उसने चूमा और उसे बिलकुल घिन नहीं आई, बल्कि एक अजीब किस्म की तुष्टि का एहसास हुआ। रणधीर को ऐसा लगता था कि वह इस बू को जानता है, पहचानता है, उसका अर्थ भी पहचानता है, लेकिन किसी को समझा नहीं सकता।

बरसात के यही दिन थे। यूं ही खिड़की के बाहर जब उसने देखा तो पीपल के पत्ते उसी तरह नहा रहे थे। हवा में फड़फड़ाहटें घुली हुई थी। अंधेरा थ, लेकिन उसमें दबी-दबी धुंधली - सी रोशनी समाई हुई थी। जैसे बरिश की बुंदों के सौ सितरों का हल्का-हल्का गुब्बारा नीचे उतर आया हो। बरसात के यही दिन थे, जब रणधीर के उस कमरे में सागवान का सिर्फ़ एक ही पलंग था। लेकिन अब उस से सटा हुआ एक और पलंग भी था और कोने में एक नई ड्रेसिंग टेबल भी मौजूद थी। दिन यही बरसात के थे। मौसम भी बिलकुल वैसा ही था। बारिश की बूंदों के साथ सितारों की रोशनी का हल्का-हल्का गुब्बार उसी तरह उतर रहा था, लेकिन वातावरण में हिना की तेज खूशबू बसी हुई थी। दूसरा पलंग खाली था। इस पलंग पर रणधीर औंधे मुंह लेटा खिड़की के बाहर पीपल के झुमते हुए पत्तों का नाच देख रहा था।

एक गोरी - चिट्टी लड़की अपने नंगे जिस्म को चादर से छुपाने की नाकाम कोशिश करते करते रणधीर के और भी करीब आ गई थी। उसकी सुर्ख रेशमी सलवार दूसरे पलंग पर पड़ी थी जिसके गहरे सुर्ख रंग के हजार्बद का एक फुंदना नीचे लटक रहा था। पलंग पर उसके दूसरे कपड़े भी पड़े थे। सुनहरी फूलदार जम्फर, अंगिया, जांधिया और मचलती जवानी की वह पुकार, जो रणधीर ने घाटन लड़की के बदन की बू में सूंघी थी। वह पुकार, जो दूध के प्यासे बच्चे के रोने से ज्यादा आनंदमयी होती है। वह पुकार जो स्वप्न के दायरे से निकल कर खामोश हो गई थी।

रणधीर खिड़की के बाहर देख रहा था। उसके बिलकुल करीब पीपल के नहाये हुए पत्ते झूम रहे थे। वह उनकी मस्तीभरी कम्पन के उस पार कहीं बहुत दूर देखने की कोशिश कर रहा था, जहां गठीले बादलों में अजीब किस्म की रोशनी घुली हुई दिखाई दे रही थी। ठीक वैसे ही जैसे उस घाटन लड़की के सीने में उसे नजर आई थी ऐसी रोशनी जो पुरैसरार गुफ्तगु की तरह दबी लेकिन स्पष्ट थी।

रणधीर के पहलू में एक गोरी - चिट्टी लड़की, जिसका जिस्म दूध और घी में गुंथे आटे की तरह मुलायम था, उस जवान औरत की उरोजों में मक्खान सी नजाकत थी। लेटी थी। उसके नींद में मस्त जवान लड़की के मस्त नंगे बदन से हिना के इत्र की खुशबू आ रही थी जो अब थकी-थकी सी मालूम होती थी। रणधीर को यह दम तोड़ती और जुनून की हद तक पहुंची हुई

खुशबू बहुत बुरी मालूम हुई। उसमें कुछ खटास थी, एक अजीब किस्म की खटास, जैसे बदहजमी में होती है, उदास, बेरंग, बेचैन।

रणधीर ने अपने पहलू में लेटी हुई लड़की को देखा। जिस तरह फटे हुए दूध के बेरंग पानी में सफेद मुर्दा फुटकियां तैरने लगती हैं, उसी तरह इस लड़की के दूधिया जिस्म पर खराशें और धब्बे तैर रहे थे और ... हिना की ऊटपटांग खुशबू। दरअसल रणधीर के मन - मस्तिष्क में वह बू बसी हुई थी, जो घाटन लड़की के जिस्म से बिना किसी बहरी कोशिश के स्वयं निकल रही थी। वह बू जो हिना के इत्र से कहीं ज्यदा हल्की - फुल्की और रस में डूबी हुई थी, जिसमें सूंघे जाने की कोशिश शामिल नहीम थी। वह खुद-ब-खुद नाक के रास्ते अंदर घुस अपनी सही मंजिल पर पहुंच जाती थी।

लड़की के स्याह बालों में चांदी के बुरादे के कण की तह जमे हुए थे। चेहरे पर पाउड़र, सुर्खी और चांदी के बुरादे के इन कणों ने मिल-जुल कर एक अजीब रंग पैदा कर दिया था। बेनाम सा उड़ा - उड़ा रंग और उसके गोरे सीने पर कच्चे रंग की अंगिया ने जगह - जगह सुर्ख ध्ब्बे बना दिये थे।

लड़की की छातियां दूध की तरह सफेद थी। उनमें हल्का - हल्का नीलापन भी थी। बगलों में बाल मुंड़े हुए थे, जिसकी वजह से वहां सुरमई गुब्बार सा पैदा हो गया था। रणधीर लड़की की तरफ देख-देख्कर कई बार सोच चुका था, क्यों ऎसा नहीं लगता, जैसे मैने अभी-अभी कीलें उखाड़कर उसे लकड़ी के बंद बक्से से निकाला हो? अमूमन किताबों और चीनी के बर्तनों पर जैसी हल्की हल्की खराशें पड़ जाती हैं, ठीक उसी प्रकार उस लड़की के नंगी जवान जिस्म पर भी कई निशान थी।

जब रणधीर ने उसके तंग और चुस्त अंगिया की डोरियां खोली थी तो उसकी पीठ और सामने सीने पर नर्म - नर्म गोश्त की झुर्रियां सी दिखाई दी थी और कमर के चारों तरफ कस्कर बांधे हुए इजार्बद का निशान भी। वजनी और नुकीले नेक्लेस से उसके सीने पर कई जगह खराशें पड़ गई थीं, जैसे नाखूनों से बड़े जोर से खुजलाया गया हो।

बरसात के यही दिन थे, पीपल के नर्म नर्म पत्तों पर बारिश की बूंदें गिरने से वैसी ही आवाज पैदा हो रही थी, जैसी रण्धीर उस दिन सारी रात सुनता रहा था। मौसम बेहद सुहाना था। ठंडी ठंडी हवा चल रही थी । उसमें हिना के इत्र की तेज खुशबू घुली हुई थी।

रणधीर के हाथ देर तक उस गोरी लड़की के क्च्चे दूध की तरह सफेद स्तनों पर हवा के झोंकों की तरह फिरते रहे थे। उसकी अंगुलियों ने उस गोरे गोरे बदन में कई चिनगारियां दौड़ती हुई महसूस की थीम। उस नाजुक बदन में कई जगहों पर सिमटे हुए क्म्पन का भी उसे पता चला था। जब उसने अपना सीना उसके सीना के साथ मिलाया तो रणधीर के जिस्म के हर रोंगटे ने उस लड़की के बदन के छिड़े तारों की भी आवाज सुनी थी, मगर वह आवाज कहां थी?

रणधीर ने आखिरी कोशिश के तौर पर उस लड़की के दूधिया जिस्म पर हाथ फेरा, लेकिन उसे कोई कपंकंपी महसूस नहीं हुई। उसकी नई नवेली दुल्हन, जो कमशीन कली थी, जो फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट की बेटी थी और जो अपने कालेज के सैकड़ों दिलों की धड़कन थी, रणधीर की किसी भी चेतना को छू न सकी। वह हिना की खुशबू में उस बू को तलाश रहा था, जो इन्हीं दिनों जब खिड़की के बाहर पीपल के पत्ते बारिश में नहा रहे थे, उस घाटन लड़की के मैले बदन से आई थी।

फुंदने

कोठी से मुलहका (मिला हुआ) वसीअ-ओ-अरीज (लंबा-चौडा) बाग में झाडियों के पीछे एक बिल्ली ने बच्चे दिए थे जो बिल्ला खा गया था। फिर एक कुतियां ने बच्चे दिए थे जो बडे हो गए और दिन-रात कोठी के अंदर भौंकते और गंदगी बिखेरते रहते थे। उनको जहर दे दिया गया था... एक-एक करके सब मर गए थे, उनकी मां भी... उनका बाप मालूम नहीं कहां था, वो होता तो उसकी मौत भी यकीनी थी।

जाने कितने बरस गुजर चुके थे... कोठी से मुलहका बाग की झाडियां सैकडों, हजारों मर्तबा कतरब्यौंती, काटी-छांटी जा चुकी थीं। कई बिल्लियों और कुत्तों ने उनके पीछे बच्चे दिए थे जिनका नाम-ओ-निशान भी न रहा था... उसकी अक्सर बदआदत (बुरी आदत) मुर्गियां वहां अंडे दे दिया करती थीं जिनको हर सुबह उठाकर वो ले जाती थीं।

उसी बाग में किसी आदमी ने उनकी नौजवान मुलाजिमा (नौकरानी) को बडी बेदर्दी से कत्ल कर दिया था... उसके गले में उसका फुंदनों वाला सुर्ख रेशमी इजारबंद जो उसने दो रोज पहले फेरी वाले से आठ आने में खरीदा था फंसा हुआ था। इस जोर से कातिल ने पेच दिए थे कि उसकी आंखें बाहर निकल आई थीं।

उसको देखकर उसको इतना तेज बुखार चढा था कि बेहोश हो गई थी... और शायद अभी तक बेहोश थी, लेकिन नहीं ऐसा क्यों कर हो सकता था इसलिए कि इस कत्ल के देर बाद मुर्गियों ने अंडे नहीं बिल्लियों ने बच्चे दिए थे और एक शादी हुई थी। कुतिया थी जिसके गले में लाल दुपट्टा था, मुकैशी... झिलमिल करता। उसकी आंखें बाहर निकली हुई नहीं थी, अंदर धंसी हुई थीं।

बाग में बैंड़ बजा था... सुर्ख वर्दियों वाले सिपाही आए थे जो रंग-बिरंगी मशकें बगलों में दबाकर मुंह से अजीब-अजीब आवाजें निकालते थे। उनकी वर्दियों के साथ कई फुंदने लगे थे जिन्हें उठा-उठाकर लोग अपने इजारबंदों में लगाते जाते थे... पर जब सुबह हुई थी तो उनका नाम-ओ-निशान तक नहीं था... सबको जहर दे दिया था।

दुल्हन को जाने क्या सूझी कमबख्त ने झाडियों के पीछे नहीं अपने बिस्तर पर सिर्फ एक बच्चा दिया ... जो बडा गुलगुथना था। उसकी मां मर गई थी... बाप भी ... दोनों को बच्चे ने मारा... उसका बाप मालूम नहीं कहां था। वो होता तो उसकी मौत भी इन दोनों के साथ होती। सुर्ख वर्दियों वाले सिपाही बडे-बडे फुंदने लटकाए जाने कहां गायब हुए कि फिर न आए। बाग में बिल्ले घूमते थे जो उसे ढूंढते थे, उसको छिछडों की भरी हुई टोकरी समझते थे हालांकि टोकरी में नारंगियां थीं।

एक दिन उसने अपनी दो नारंगियां निकाल के सामने रख दीं। उसके पीछे हो के उसने उनको देखा, मगर नजर न आईं उसने सोचा उसकी वजह ये है कि छोटी हैं। मगर वो उसके

सोचते-सोचते ही बडी हो गई और उसने रेशमी कपडे में लपेटकर आतिशदान पर रख दीं। अब कुत्ते भौंकने लगे... नारंगियां फर्श पर लुढकने लगीं... कोठी के हर फर्श पर उछलीं, हर कमरे में कूदीं, और उछलती-कूदती बडे-बडे बागों में भागने-दौड़ने लगीं... कुत्ते उनसे खेलते और आपस में लड़ते-झगड़ते रहते। जाने क्या हुआ। इन कुत्तों में दो जहर खा के मर गए जो बाकी बचे वो उनकी अधेड़-उम्र की हट्टी-कट्टी मुलाजिमा खा गई।

ये उस नौजवान की जगह आई थी जिसको किसी आदमी ने कत्ल कर दिया था, गले में उसके फुंदनों वाले इजारबंद का फंदा डालकर।

उसकी मां थी। अधेड़ उम्र की मुलाजिमा से उम्र में छह-सात बरस बडी। उसकी तरह हट्टी-कट्टी नहीं थी। हर रोज सुबह-शाम मोटर में सैर को जाती थी और बदआदत मुर्गियों की तरह दूर-दराज बागों में झाडियों के पीछे अंडे देती थी। उनको वो खुद उठाकर लाती थी न ड्राइवर। आमलेट बनाती थी जिसके दाग कपडों पर पड़ जाते थे। सूख जाते तो उनको बाग में झाडियों के पीछे फेंक देती थी जहां से चीलें उठाकर ले जाती थी।

एक दिन उसकी सहेली आई... पाकिस्तान मेल मोटर नम्बर पी।एल। 9612 । बडी गर्मी थी। डैडी पहाड़ पर थे, मम्मी सैर करने गई हुई थी... पसीने छूट रहे थे। उसने कमरे में दाखिल होते ही अपनी ब्लाउज उतारी और पंखे के नीचे खडी हो गई। उसके दूध उबले हुए थे जो आहिस्ता-आहिस्ता ठंडे हो गए। उसके दूध ठंडे थे जो आहिस्ता-आहिस्ता उबलने लगे। आखिर दोनों दूध हिल-हिल के गुनगुने हो गए और खट्टी लस्सी बन गए।

उस सहेली का बैंड़ बज गया... मगर वो वर्दी वाले सिपाही फुंदने नचाते न आए। उनकी जगह पीतल के बर्तन थे... छोटे और बडे जिनसे आवाजें निकलती थीं। गरजदार और धीमी... धीमी और गरजदार।

ये सहेली जब फिर मिली तो उसने बताया कि वो बदल गई है। सचमुच बदल गई थी। उसके अब दो पेट थे। एक पुराना, दूसरा नया। एक के ऊपर दूसरा चढा हुआ था। उसके दूध फटे हुए थे।

फिर उसके भाई का बैंड़ बजा... अधेड़ उम्र की हट्टी-कट्टी उम्र की मुलाजिमा बहुत रोई। उसके भाई ने उसको बहुत दिलासा दिया, बेचारी को अपनी शादी याद आ गई थी।

रातभर उसके भाई और उसकी दुल्हन की लडाई होती रही, वो रोती रही वो हंसता रहा... सुबह हुई तो अधेड़ उम्र की हट्टी-कट्टी मुलाजिमा उसके भाई को दिलासा देने के लिए अपने साथ ले गई। दुल्हन को नहलाया गया... उसकी सलवार में उसका लाल फुंदनोंवाला इजारबंद पडा था... मालूम नहीं ये दुल्हन के गले में क्यूं न बांधा गया।

उसकी आंखें बहुत मोटी थीं। अगर गला जोर से घोंटा जाता तो वो जिबह किए हुए बकरे की आंखों की तरह बाहर निकल आतीं। और उसको बहुत तेज बुखार चढता मगर पहला तो अभी

तक उतरा नहीं ... हो सकता है उतर गया हो और ये नया बुखार हो जिसमें वो अभी तक बेहोश है।

उसकी मां मोटर ड्राइवरी सीख रही है... बाप होटल में रहता है। कभी-कभी आता है और अपने लड़के से मिलकर चला जाता है। लड़का भी कभी-कभी बीवी को घर बुला लेता है। अधेड़ उम्र की हट्टी-कट्टी मुलाजिमा को दो-तीन रोज के बाद कोई याद सताती है तो रोना शुरू कर देती है वो उसे दिलासा देता है, वो उसे पुचकारती है। और दुल्हन चली जाती है।

अब वो और दुल्हन भाभी दोनों सैर को जाती हैं... सहेली भी पाकिस्तान मेल मोटर नम्बर पी।एल। 9612 सैर करते-करते अजंता जा निकलती है जहां तस्वीरें बनाने का काम सिखाया जाता है। तस्वीरें देखकर तीनों तस्वीरें बन जाती हैं। रंग ही रंग, लाल-पीले, हरे-नीले। सबके सब चीखने वाले हैं। उनको उन रंगों का खालिक (बनानेवाला) चुप कराता है। उसके लंबे-लंबे बाल हैं। सर्दियों और गर्मियों में ओवर-कोट पहनता है। अच्छी शक्ल-ओ-सूरत का है। अंदर बाहर हमेशा खडाऊं इस्तेमाल करता है... अपने रंगों को चुप कराने के बाद खुद चीखना शुरू कर देता है। उसको ये तीनों चुप कराती हैं और बाद में खुद चिल्लाने लगती हैं।

तीनों अजंता में मुजर्रद (अकेला, अविवाहित) आर्ट के सैकडे नमूने बनाती रहीं। एक की हर तस्वीर में औरत के दो पेट होते हैं। मुख्तलिफ (विभिन्न) रंगों के। दूसरी की तस्वीरों में औरत अधेड़ उम्र की होती है, हट्टी-कट्टी। तीसरी की तस्वीरों में फुंदने ही फुंदने, इजारबंदों का गुच्छा। मुजर्रद तस्वीरें बनती रहीं, मगर तीनों के दूध सूखते रहे ... बडी गर्मी थी इतनी कि तीनों पसीने में सराबोर थीं...लगे कमरे के अंदर दाखिल होते ही उन्होंने अपने ब्लाउज उतारे और पंखे के नीचे खडी हो गई। पंखा चलता रहा। दूधों में ठंड़क पैदा हुई न गर्मी।

उसी मम्मी दूसरे कमरे में थी। ड्राइवर उसके बदन से मोबिल ऑयल पोंछ रहा था। डैडी होटल में था। जहां उसकी लेडी स्टेनोग्राफर उसके माथे पर यूडीक्लोन मल रही थी। एक दिन उसका भी बैंड़ बज गया। उजाड़ बाग फिर बारौनक हो गया। गमलों और दरवाजों की आराइश (सजावट) अजंता स्टूडियो के मालिक ने की थी। बडी-बडी गहरी लिपिस्टिकें उसके बिखेरे हुए रंग देखकर उड़ गई। एक जो ज्यादा स्याही-मायल थी, इतनी उडी कि वहीं गिर कर उसकी शागिर्द हो गई।

उसके उरुसी (शादी का) लिबास का डिजाइन भी उसने तैयार किया था। उसने उसी हजारों सम्तें (दिशाएं) पैदा कर दी थीं। ऐन सामने से देखो तो वो मुख्तलिफ रंगों के इजारबंदों का बंड़ल मालूम होती थी। जरा उधर हट जाओ तो फलों की टोकरी थी। एक तरफ हो जाओ तो खिड़की पर पडा हुआ फुलकारी का पर्दा। अकब (पीछे) में चले जाओ तो कुचले हुए तरबूजों का ढेर। जरा जाबिया (कोण) बदलकर देखो तो टमाटो सास से भरा हुआ मर्तबान। ऊपर से देखो तो यगाना आर्ट, नीचे से देखो तो कीराजी की मुबहम शायरी।

फनशनास निगाहें अश-अश कर उठीं... दूल्हा इस कदर मुताअस्सिर हुआ था कि शादी के दूसरे रोज ही उसने तहैया कर लिया कि वो भी मुजर्रद आर्टिस्ट बन जाएगा। चुनांचे अपनी बीवी के साथ अजंता गया जहां उन्हें मालूम हुआ कि उसकी शादी हो रही है और वो चंद रोज से अपनी होने वाली दुल्हन ही के घर रहता है।

उसकी होने वाली दुल्हन वही गहरे रंग की लिपिस्टिक थी जो दूसरी लिपिस्टिकों के मुकाबले में ज्यादा स्याही-मायल थी। शुरू-शुरू में चंद महीने तक उसके शौहर को उससे और मुजर्रद आर्ट से दिलचस्पी रही। लेकिन जब अजंता स्टूडियो बंद हो गया और उसके मालिक की कहीं से भी सुनबुन न मिली तो उसने नमक का कारोबार शुरू कर दिया जो बहुत नफआ-बख्श था। उस कारोबार के दौरान में उसकी मुलाकात एक लड़की से हुई जिसके दूध सूखे हुए नहीं थे। ये उसको पसंद आ गए। बैंड़ न बजा लेकिन शादी हो गई। पहली अपने ब्रश उठाकर ले गई। अलग रहने लगी।

ये नाचाकी (मनमुटाव, वैमनस्य) पहले तो दोनों के लिए तलखी का मूजिब (कारण, सबब) हुई, लेकिन बाद में एक अजीब-ओ-गरीब मिठास में तब्दील हो गई। उसकी सहेली ने जो दूसरा शौहर तब्दील करने के बाद सारे यूरोप का चक्कर लगा आई थी और अब दिक (तपेदिक, क्षय रोग) की मरीज थी, इस मिठास को क्यूबिक आर्ट में पेंट किया। साफ शफ्फाफ चीनी के बेशुमार क्यूब थे जो थोहर के पौधों के दरमियान इस अंदाज से तुले रखे थे कि उनसे दो शक्लें बन गई थीं। उन पर शहद की मक्खियां बैठी चूस रही थीं।

उसकी दूसरी सहेली ने जहर खाकर खुदकुशी कर ली थी। जब उसको ये अलमनाक (खेदजनक) खबर मिली तो वो बेहोश हो गई। मालूम नहीं बेहोशी नई थी या वही पुरानी जो बडे तेज बुखार के बाद जुर (प्रकट होना) में आई थी।

उसका बाप यूडीक्लोन में था जहां उसका होटल उसकी लेडी स्टेनोग्राफर का सर सहलाता था।

उसकी मम्मी ने घर का सारा हिसाब-किताब अधेड़ उम्र की हट्टी-कट्टी मुलाजिमा के हवाले कर दिया था। अब उसको ड्राइविंग आ गई थी। मगर बहुत बीमार हो गई थी। मगर फिर भी उसको ड्राइवर के बिन मां के पिल्ले का बहुत खयाल था। वो उसको अपना मोबिल ऑयल पिलाती थी।

उसकी भाभी और उसके भाई की जिंदगी बहुत अधेड़ और हट्टी-कट्टी हो गई थी। दोनों आपस में बडे प्यार से मिलते थे कि अचानक एक रात जबकि मुलाजिमा और उसका भाई घर का हिसाब कर रहे थे, उसकी भाभी नमूदार हुई। वो मुजर्रद थी। उसके हाथ में कलम था न ब्रश, लेकिन उसने उन दोनों का हिसाब साफ कर दिया।

सुबह कमरे में से जमे हुए ल के दो बडे-बडे फुंदने निकले जो उसकी भाभी के गले में लगा दिए गए। खाबिन्द (पति) से नाचाकी के बाइस (कारण) उसकी जिंदगी तल्ख होकर बाद में

अजीब-ओ-गरीब मिठास में तब्दील हो गई थी। उसने उसको थोडा-सा तल्ख बनाने की कोशिश की और शराब पीना शुरू की मगर नाकाम रही, इसलिए मिकदार कम थी- उसने मिकदार बढा दी, हत्ता कि वो उसमें डुबकियां लेने लगी... लोग समझते थे कि अब गर्क (डूब जाना) हुई और अब गर्क हुई। मगर वो सतह पर उभर आई थी, मुंह से शराब पोंछती हुई, कहकहें लगाती हुई। सुबह को जब उठती तो उसे महसूस होता कि रातभर उसके जिस्म का जर्रा-जर्रा दहाडे-मार-मारकर रोता रहा है...उसके वो सब बच्चे जो पैदा हो सकते थे, उन कब्रों में जो उनके लिए बन सकती थीं, उस दूध के लिए जो उनका हो सकता था, बिलख-बिलखकर रो रहे हैं। मगर उसके दूध कहां थे... वो तो जंगली बिल्ले पी चुके थे।

वो और ज्यादा पीती कि अथाह समन्दर में डूब जाए मगर उसकी ख्वाहिश पूरी नहीं होती। जहीन थी। पढी-लिखी थी। जिंसी (लिंग संबंधी) मौजूआत (विषय) पर बगैर किसी तसन्नोअ (बनावट) के बेतकल्लुफ गुफ्तगू करती थी। मर्दों के साथ जिस्मानी रिश्ता कायम करने में मजायका (आपत्ति) नहीं समझती थी। मगर फिर भी कभी-कभी रात की तारीकी में उसका जी चाहता था कि अपनी किसी बदआदत मुर्गी की तरह झाडियों के पीछे जाए और एक अंडा दे आए।

बिल्कुल खोखली हो गई। सिर्फ हड्डियों का ढांचा बाकी रह गया तो उससे लोग दूर रहने लगे... वो समझ गई, चुनांचे वो उनके पीछे न भागी और अकेली घर में रहने लगी... सिगरेट पर सिगरेट फूंकती, शराब पीती और जाने क्या सोचती रहती... रात को बहुत कम सोती थी। कोठी के इर्द-गिर्द घूमती रहती थी।

सामने क्वार्टर में ड्राइवर का बिना मां का बच्चा मोबिल ऑयल के लिए रोता रहता था। मगर उसी मां के पास खत्म हो गया था। ड्राइवर ने एक्सीडेंट कर दिया था। मोटर गिराज में और उसकी मां अस्पताल में पडी थी, जहां उसकी एक टांग काटी जा चुकी थी। दूसरी काटी जाने वाली थी।

वो कभी-कभी क्वार्टर के अंदर झांककर देखती तो उसको महसूस होता कि उसके दूधों की तलछट में हल्की लर्जिश (कंपकंपी) हुई है। मगर उस बदजायका शय (चीज) से तो उसके बच्चे के होंठ भी तर न होते।

उसके भाई ने कुछ अर्से से बाहर रहना शुरू कर दिया था। आखिर एक दिन उसका खत स्विट्जरलैंड से आया कि वो वहां अपना इलाज करा रहा है, नर्स बहुत अच्छी है। अस्पताल से निकलते ही वो उससे शादी करने वाला है।

अधेड़ उम्र की हट्टी-कट्टी मुलाजिमा ने थोडा जेवर, कुछ नकदी और बहुत से कपडे जो उसकी मम्मी के थे चुराए और चंद रोज के बाद गायब हो गई। इसके बाद उसकी मां ऑपरेशन नाकाम होने बायस अस्पताल में मर गई।

उसका बाप जनाजे में शामिल हुआ। उसके बाद उसने उसकी सूरत न देखी। अब वो बिल्कुल तन्हा थी। जितने नौकर थे उतने अल्हदा कर दिए। ड्राइवर मोहब्बत... उसके बच्चे के लिए उसने एक आया रख दी।।। कोई बोझ उसके खयालों में बाकी न रहा था। वो चाहती थी कि आहिस्ता-आहिस्ता उसे उनसे भी छुटकारा मिल जाए। कभी-कभार अगर कोई उससे मिलने आता तो वो अंदर से चिल्ला उठती, 'चले जाओ... जो कोई भी तुम हो, चले जाओ... मैं किसी से मिलना नहीं चाहती।

सेफ में उसको अपनी मां के बेशुमार कीमती जेवरात मिले थे उसके अपने भी थे जिनसे उसको कोई रगबत (रुचि) न थी। मगर अब वो रात घंटों आईने के सामने नंगी बैठकर ये तमाम जेवर अपने बदन पर सजाती और शराब पीकर कन्सुरी आवाज में फहश (अश्लील) गाने गाती थी। आसपास और कोई कोठी नहीं थी, इसलिए मुकम्मल आजादी थी। अपने जिस्म को तो वो कई तरीकों से नंगा कर चुकी थी। अब वो चाहती थी कि अपनी रूह को भी नंगा कर दे, मगर उसमें वो जबर्दस्त हिजाब (शर्म) महसूस करती थी। इस हिजाब को दबाने के लिए सिर्फ एक ही तरीका उसकी समझ में आता था कि पीए और खूब पीए और इस हालत में अपने नंगे बदन से मदद ले... मगर ये बहुत बडा अलमिया (दुखांत) था कि वो आखिरी हद तक नंगा होकर सतरपोश (शरीर का वह भाग छिपाना जिसे छिपाना आवश्यक है) हो गया था। तस्वीरें बना-बनाकर वो थक चुकी थी... एक अर्से से उसका पेंटिंग का सामान संदूकचे में बंद पडा था। लेकिन एक दिन उसने सब रंग निकाले और बडे-बडे प्यालों में घोले तमाम ब्रश धो-धो कर एकतरफ रखे और आईने के सामने नंगी खडी हो गई और अपने जिस्म पर नई खद-ओ-खाल (रूपरेखा) बनाने शुरू किए। उसकी ये कोशिश अपने अजूद को मुकम्मल तौर पर उरयां (नंगा) करने की थी।

वो अपने सामने का हिस्सा ही पेंट कर सकती थी। दिनभर वो उसमें मसरूफ रही। बिन खाए-पिए आईने के सामने खडी अपने बदन पर मुख्तलिफ रंग जमाती और टेढे ननके खुतूत बनाती रही। उसके ब्रश में एतिमाद था... आधी रात के करीब उसने दूर हटकर बगौर जायजा लेकर इत्मीनान का सांस लिया। उसके बाद उसने तमाम जेवरात एक-एक करके अपने रंगों से लिथडे हुए जिस्म पर सजाए और आईने में एक बार फिर गौर से देखा कि एकदम आहट हुई।

उसने पलटकर देखा... एक आदमी छुरा हाथ में लिए, मुंह में ढाटा बांधे जैसे हमला करना चाहता था, मगर जब वो मुडी तो हमलावर के हलक से चीख बुलंद हुई। छुरा उसके हाथ से गिर पडा। अफरा-तफरी के आलम में कभी उधर का रुख किया, कभी इधर का ... आखिर जो रास्ता मिला उसमें से भाग निकला।

वो उसके पीछे भागी, चीखती-पुकारती- ठहरो... ठहरो ... मैं तुमसे कुछ नहीं कंगी ... ठहर। मगर चोर ने उसकी एक न सुनी और दीवार फांद कर गायब हो गया। मायूस होकर वापस आई। दरवाजे की दहलीज के पास चोर का खंजर पडा था उसने उसे उठा लिया और अंदर चली गई...

अचानक उसकी नजरें आईने से दो-चार हुई। जहां उसका दिल था वहां उसने मियान नुमा चमडे के रंग का खोल बनाया हुआ था। उसने उस पर खंजर रख कर देखा। खोल बहुत छोटा था, उसने खंजर फेंक दिया और बोतल में से शराब के चार-पांच बडे घूंट पीकर इधर-उधर टहलने लगी... वो कई बोतलें खाली कर चुकी थी। खाया कुछ भी नहीं था... देर तक टहलने के बाद वो फिर आईने के सामने आई। उसके गले में इजारबंदनुमा गुलूबंद था। जिसके बडे-बडे फुंदने थे। ये उसने ब्रश से बनाया था।

दफअतन (यकबयक) उसको ऐसा महसूस हुआ कि ये गुलूबंद तंग होने लगा है। आहिस्ता-आहिस्ता वो उसके गले के अंदर धंसता जा रहा है... वो खामोश खडी आईने में आंखे गाडे रही जो उसी रफ्तार से बाहर निकल रही थीं... थोडी देर के बाद उसके चेहरे की तमाम रगें फूलने लगीं। फिर एकदम से उसने चीख मारी और औंधे मुंह फर्श पर गिर पडी।

टोबा टेकसिंह

बंटवारे के दो-तीन साल बाद पाकिस्तान और हिंदुस्तान की हुकूमतों को ख्याल आया कि अख्लाकी कैदियों की तरह पागलों का भी तबादला होना चाहिए, यानी जो मुसलमान पागल हिन्दुस्तान के पागलखानों में हैं उन्हें पाकिस्तान पहुंचा दिया जाय और जो हिन्दू और सिख पाकिस्तान के पागलखानों में है उन्हें हिन्दुस्तान के हवाले कर दिया जाय।

मालूम नहीं यह बात माकूल थी या गैर-माकूल थी। बहरहाल, दानिशमंदों के फैसले के मुताबिक इधर-उधर ऊँची सतह की कांफ्रेंसें हुई और दिन आखिर एक दिन पागलों के तबादले के लिए मुकर्रर हो गया। अच्छी तरह छान बीन की गयी। वो मुसलमान पागल जिनके लवाहिकीन (सम्बन्धी) हिन्दुस्तान ही में थे वहीं रहने दिये गये थे। बाकी जो थे उनको सरहद पर रवाना कर दिया गया। यहां पाकिस्तान में चूंकि करीब-करीब तमाम हिन्दु सिख जा चुके थे इसलिए किसी को रखने-रखाने का सवाल ही न पैदा हुआ। जितने हिन्दू-सिख पागल थे सबके सब पुलिस की हिफाजत में सरहद पर पहुंचा दिये गये।

उधर का मालूम नहीं। लेकिन इधर लाहौर के पागलखानों में जब इस तबादले की खबर पहुंची तो बड़ी दिलचस्प चीमेगोइयां होने लगी। एक मुसलमान पागल जो बारह बरस से हर रोज बाकायदगी के साथ जमींदार पढ़ता था, उससे जब उसके एक दोस्त ने पूछा--- मोल्हीसाब। ये पाकिस्तान क्या होता है?

तो उसने बड़े गौरो फिक्र के बाद जवाब दिया-

-- हिन्दुस्तान में एक ऐसी जगह है जहां उस्तरे बनते हैं।

ये जवाब सुनकर उसका दोस्त मुतमइन हो गया।

इसी तरह एक और सिख पागल ने एक दूसरे सिख पागल से पूछा–

- सरदार जी हमें हिन्दुस्तान क्यों भेजा जा रहा है - हमें तो वहां की बोली नहीं आती।

दूसरा मुस्कराया-

-- मुझे तो हिन्दुस्तान की बोली आती है - हिन्दुस्तानी बड़े शैतानी आकड़ -आकड़ फिरते हैं।

एक मुसलमान पागल ने नहाते-नहाते 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' का नारा इस जोर से बुलन्द किया कि फर्श पर फिसल कर गिरा और बेहोश हो गया।

बाज पागल ऐसे थे जो पागल नहीं थे। उनमें अकसरियत ऐसे कातिलों की थी जिनके रिश्तेदारों ने अफसरों को दे- दिलाकर पागलखाने भिजवा दिया था कि फांसी के फंदे से बच जायें। ये कुछ-कुछ समझते थे कि हिंदुस्तान क्या तकसीम हुआ और यह पाकिस्तान क्या है, लेकिन सही वाकेआत से ये भी बेखबर थे। अखबारों से कुछ पता नहीं चलता था और पहरेदार

सिपाही अनपढ़ और जाहिल थे। उनकी गुफ्तगू (बातचीत) से भी वो कोई नतीजा बरआमद नहीं कर सकते थे। उनको सिर्फ इतना मालूम था कि एक आदमी मुहम्मद अली जिन्ना है, जिसको कायदे आजम कहते हैं। उसने मुसलमानों के लिए एक अलाहेदा मुल्क बनाया है जिसका नाम पाकिस्तान है। यह कहां है? इसका महल-ए-वकू (स्थल) क्या है इसके मुतअल्लिक वह कुछ नहीं जानते थे। यही वजह है कि पागल खाने में वो सब पागल जिनका दिमाग पूरी तरह माउफ नहीं हुआ था, इस मखमसे में गिरफ्तार थे कि वो पाकिस्तान में हैं या हिन्दुस्तान में। अगर हिन्दुस्तान में हैं तो पाकिस्तान कहां है। अगर वो पाकिस्तान में है तो ये कैसे हो सकता है कि वो कुछ अरसा पहले यहां रहते हुए भी हिन्दुस्तान में थे। एक पागल तो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, और हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के चक्कर में कुछ ऐसा गिरफ्तार हुआ कि और ज्यादा पागल हो गया। झाड़ू देते-देते एक दिन दरख्त पर चढ़ गया और टहनी पर बैठ कर दो घंटे मुस्तकिल तकरीर करता रहा, जो पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के नाजुक मसअले पर थी। सिपाहियों ने उसे नीचे उतरने को कहा तो वो और ऊपर चढ़ गया। ड़राया, धमकाया गया तो उसने कहा-

-- मैं न हिन्दुस्तान में रहना चाहता हूं न पाकिस्तान में। मैं इस दरख्त पर ही रहूंगा।

एक एमएससी पास रेडियो इंजीनियर में, जो मुसलमान था और दूसरे पागलों से बिल्कुल अलग-थलग, बाग की एक खास रविश (क्यारी) पर सारा दिन खामोश टहलता रहता था, यह तब्दीली नमूदार हुई कि उसने तमाम कपड़े उतारकर दफादार के हवाले कर दिये और नंगधंडंग़ सारे बाग में चलना शुरू कर दिया।

यन्यूट के एक मोटे मुसलमान पागल ने, जो मुस्लिम लीग का एक सरगर्म कारकुन था और दिन में पन्द्रह-सोलह मरतबा नहाता था, यकलख्त (एकदम) यह आदत तर्क (छोड़)कर दी। उसका नाम मुहम्मद अली था। चुनांचे उसने एक दिन अपने जिंगले में ऐलान कर दिया कि वह कायदे आजम मोहम्मद अली जिन्ना है। उसकी देखादेखी एक सिख पागल मास्टर तारासिंह बन गया। करीब था कि उस जिंगले में खून-खराबा हो जाय, मगर दोनों को खतरनाग पागल करार देकर अलहदा-अलहदा बन्द कर दिया गया।

लाहौर का एक नौजवान हिन्दू वकील था जो मुहब्बत में मुब्तिला होकर पागल हो गया था। जब उसने सुना कि अमृतसर हिन्दुस्तान में चला गया है तो उसे बहुत दुख हुआ। इसी शहर की एक हिन्दू लड़की से उसे मुहब्बत हो गयी थी। गो उसने इस वकील को ठुकरा दिया था, मगर दीवानगी की हालत में भी वह उसको नहीं भूला था। चुनांचे वह उन तमाम मुस्लिम लीड़रों

को गालियां देता था, जिन्होंने मिल मिलाकर हिन्दुस्तान के दो टुकड़े कर दिये-- उसकी महबूबा हिन्दुस्तानी बन गयी और वह पाकिस्तानी।

जब तबादले की बात शुरू हुई तो वकील को कई पागलों ने समझाया कि वह दिल बुरा न करे,उसको हिन्दुस्तान वापस भेज दिया जायेगा। उस हिन्दुस्तान में जहां उसकी महबूबा रहती है। मगर वह लाहौर छोड़ना नहीं चाहता था-- इस ख्याल से कि अमृतसर में उसकी प्रैक्टिस नहीं चलेगी।

यूरोपियन वार्ड में दो एंग्लो-इण्डियन पागल थे। उनको जब मालूम हुआ कि हिन्दुस्तान को आजाद करके अंग्रेज चले गये हैं तो उनको बहुत रंज हुआ। वह छुप-छुप कर इस मसअले पर गुफ्तगू करते रहते कि पागलखने में उनकी हैसियत क्या होगी। यूरापियन वार्ड रहेगा या उड़ जायगा। ब्रेकफास्ट मिलेगा या नहीं। क्या उन्हें ड़बलरोटी के बजाय ब्लडी इण्डियन चपाती तो जहरमार नहीं करनी पड़ेगी ?

एक सिख था जिसको पागलखाने में दाखिल हुए पन्द्रह बरस हो चुके थे। हर वक्त उसकी जबान पर अजीबोगरीब अल्फाज सुनने में आते थे, 'ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी बेध्याना विमन्ग दी बाल आफ दी लालटेन।' वो न दिन में सोता था न रात में। पहरेदारों का कहना था कि पन्द्रह बरस के तवील अर्से में एक एक लम्हे के लिए भी नहीं सोया। लेटा भी नहीं था। अलबना किसी दीवार के साथ टेक लगा लेता था।

हर वक्त खड़ा रहने से उसके पांव सूज गये थे। पिंड़लियां भी फूल गयीं थीं। मगर इस जिस्मानी तकलीफ के बावजूद वह लेटकर आराम नहीं करता था। हिन्दुस्तान-पाकिस्तान और पागलों के तबादले के मुतअिल्लक जब कभी पागलखाने में गुफ्तगू होती थी तो वह गौर से सुनता था। कोई उससे पूछता कि उसका क्या खयाल है तो बड़ी संजीदगी से जवाब देता, 'ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी बेध्याना विमन्ग दी वाल आफ दी पाकिस्तान गवर्नमेंट।'

लेकिन बाद में आफ दी पाकिस्तान गवर्नमेंट की जगह आफ दी टोबा टेकसिंह गवर्नमेंट ने ले ली और उसने दूसरे पागलों से पूछना शुरू किया कि टोबा टेकसिंह कहां है जहां का वो रहने वाला है। लेकिन किसी को भी नहीं मालूम था कि वो पाकिस्तान में है या हिन्दुस्तान में। जो यह बताने की कोशिश करते थे वो खुद इस उलझाव में गिरफ्तार हो जाते थे कि स्याल कोटा पहले हिन्दुस्तान में होता था, पर अब सुना है कि पाकिस्तान में है। क्या पता है कि लाहौर जो अब पाकिस्तान में है कल हिन्दुस्तान में चला जायगा या सारा हिन्दुस्तान हीं

पाकिस्तान बन जायेगा। और यह भी कौन सीने पर हाथ रखकर कह सकता था कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों किसी दिन सिरे से गायब नहीं हो जायेंगे।

उस सिख पागल के केस छिदरे होके बहुत मुख्तसर रह गये थे। चूंकि वह बहुत कम नहाता था इसलिए दाढ़ी और बाल आपस में जम गये थे जिनके बाइस (कारण) उसकी शक्ल बड़ी भयानक हो गयी थी। मगर आदमी बेजरर (अहानिकारक) था। पन्द्रह बरसों में उसने किसी से झगड़ा-फसाद नहीं किया था। पागलखाने के जो पुराने मुलाजिम थे वो उसके मुतअलिक इतना जानते थे कि टोबा टेकसिंह में उसकी कई जमीनें थीं। अच्छा खाता-पीता जमींदार था कि अचानक दिमाग उलट गया। उसके रिश्तेदार लोहे की मोटी-मोटी जंजीरों में उसे बांधकर लाये और पागलखाने में दाखिल करा गये।

महीने में एक बार मुलाकात के लिए ये लोग आते थे और उसकी खैर-खैरियत दरयाफ्त करके चले जाते थे। एक मुप्त तक ये सिलसिला जारी रहा, पर जब पाकिस्तान हिन्दुस्तान की गड़बड़ शुरू हुई तो उनका आना बन्द हो गया।

उसका नाम बिशन सिंह था। मगर सब उसे टोबा टेकसिंह कहते थे। उसको ये मालूम नहीं था कि दिन कौन-सा है, महीना कौन-सा है या कितने दिन बीत चुके हैं। लेकिन हर महीने जब उसके अजीज व अकारिब (सम्बन्धी) उससे मिलने के लिए आते तो उसे अपने आप पता चल जाता था। चुनांचे वो दफादार से कहता कि उसकी मुलाकात आ रही है। उस दिन वह अच्छी तरह नहाता, बदन पर खूब साबुन घिसता और सिर में तेल लगाकर कंघा करता। अपने कपड़े जो वह कभी इस्तेमाल नहीं करता था, निकलवा के पहनता और यूं सज-बन कर मिलने वालों के पास आता। वो उससे कुछ पूछते तो वह खामोश रहता या कभी-कभार 'ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी वेध्याना विमन्ग दी वाल आफ दी लालटेन ' कह देता। उसकी एक लड़की थी जो हर महीने एक उंगली बढ़ती-बढ़ती पन्द्रह बरसों में जवान हो गयी थी। बिशन सिंह उसको पहचानता ही नहीं था। वह बच्ची थी जब भी आपने बाप को देखकर रोती थी, जवान हुई तब भी उसकी आंख में आंसू बहते थे।पाकिस्तान और हिन्दुस्तान का किस्सा शुरू हुआ तो उसने दूसरे पागलों से पूछना शुरू किया कि टोबा टेकसिंह कहां है। जब इत्मीनान बख्श (सन्तोषजनक) जवाब न मिला तो उसकी कुरेद दिन-ब-दिन बढ़ती गयी। अब मुलाकात नहीं आती है। पहले तो उसे अपने आप पता चल जाता था कि मिलने वाले आ रहे हैं, पर अब जैसे उसके दिल की आवाज भी बन्द हो गयी थी जो उसे उनकी आमद की खबर दे दिया करती थी।

उसकी बड़ी ख्वाहिश थी कि वो लोग आयें जो उससे हमदर्दी का इजहार करते थे ओर उसके लिए फल, मिठाइयां और कपड़े लाते थे। वो उनसे अगर पूछता कि टोबा टेकसिंह कहां है तो यकीनन वो उसे बता देते कि पाकिस्तान में है या हिन्दुस्तान में, क्योंकि उसका ख्याल था कि वो टोबा टेकसिंह ही से आते हैं जहां उसकी जमीनें हैं।

पागलखाने में एक पागल ऐसा भी था जो खुद को खुदा कहता था। उससे जब एक दिन बिशन सिंह ने पूछा कि टोबा टेकसिंह पाकिस्तान में है या हिन्दुस्तान में तो उसने हस्बेआदत (आदत के अनुसार) कहकहा लगाया और कहा--

-- वो न पाकिस्तान में है न हिन्दुस्तान में, इसलिए कि हमने अभी तक हुक्म नहीं लगाया।

बिशन सिंह ने इस खुदा से कई मरतबा बड़ी मिन्नत समाजत से कहा कि वो हुक्म दे दे ताकि झंझट खत्म हो, मगर वो बहुत मसरूफ था, इसलिए कि उसे ओर बेशुमार हुक्म देने थे। एक दिन तंग आकर वह उस पर बरस पड़ा, 'ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी बेध्याना विमन्ग दी वाल आफ वाहे गुरूजी दा खलसा एन्ड वाहे गुरूजी की फतह। जो बोले सो निहाल सत सिरी अकाल।' उसका शायद यह मतलब था कि तुम मुसलमान के खुदा हो, सिखों के खुदा होते तो जरूर मेरी सुनते। तबादले से कुछ दिन पहले टोबा टेकसिंह का एक मुसलमान दोस्त मुलाकात के लिए आया। पहले वह कभी नहीं आया था। जब बिशन सिंह ने उसे देखा तो एक तरफ हट गया और वापस आने लगा मगर सिपाहियों ने उसे रोका-- -- ये तुमसे मिलने आया है - तुम्हारा दोस्त फजलदीन है।

बिशन सिंह ने फजलदीन को देखा और कुछ बड़बड़ाने लगा। फजलदीन ने आगे बढ़कर उसके कंधे पर हाथ रखा।

-- मैं बहुत दिनों से सोच रहा था कि तुमसे मिलूं लेकिन फुर्सत ही न मिली। तुम्हारे सब आदमी खैरियत से चले गये थे मुझसे जितनी मदद हो सकी मैने की। तुम्हारी बेटी रूप कौर।।।। वह कुछ कहते कहते रुक गया। बिशन सिंह कुछ याद करने लगा --

-- बेटी रूप कौर।

फजलदीन ने रूक कर कहा--- हां वह भी ठीक ठाक है। उनके साथ ही चली गयी थी।

बिशन सिंह खामोश रहा। फजलदीन ने कहना शुरू किया-

-- उन्होंने मुझसे कहा था कि तुम्हारी खैर-खैरियत पूछता रहूं। अब मैंने सुना है कि तुम हिन्दुस्तान जा रहे हो। भाई बलबीर सिंह और भाई बिधावा सिंह से सलाम कहना-- और बहन अमृत कौर से भी। भाई बलबीर से कहना फजलदीन राजी-खुशी है। वो भूरी भैंसे जो वो छोड़ गये

थे उनमें से एक ने कट्टा दिया है दूसरी के कट्टी हुई थी पर वो छः दिन की हो के मर गयी और और मेरे लायक जो खिदमत हो कहना, मै। हर वक्त तैयार हूं और ये तुम्हारे लिए थोड़े से मरून्डे लाया हूं।

बिशन सिंह ने मरून्डे की पोटली लेकर पास खड़े सिपाही के हवाले कर दी और फजलदीन से पूछा- -- टोबा टेकसिंह कहां है?

--टोबा टेकसिंह।।। उसने कद्रे हैरत से कहा-- कहां है! वहीं है, जहां था।

बिशन सिंह ने पूछा-- पाकिस्तान में या हिन्दुस्तान में?

--हिन्दुस्तान में।।।। नहीं-नहीं पाकिस्तान में।।।।

फजलदीन बौखला-सा गया। बिशन सिंह बड़बड़ाता हुआ चला गया-- ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी बेध्याना विमन्ग दी वाल आफ दी पाकिस्तान एन्ड हिन्दुस्तान आफ दी हए फिटे मुंह।

तबादले की तैयारियां मुकम्मल हो चुकी थीं। इधर से उधर और उधर से इधर आने वाले पागलों की फेहरिस्तें (सूचियां) पहुंच गयी थीं, तबादले का दिन भी मुकरर्र हो गया था। सख्त सर्दियां थीं। जब लाहौर के पागलखाने से हिन्दू-सिख पागलों से भरी हुई लारियां पुलिस के मुहाफिज दस्ते के साथ् रवाना हुई तो मुतअल्लिका (संबंधित) अफसर भी हमराह थे। वाहगा के बार्डर पर तरफैन के (दोनों तरफ से) सुपरिटेंडेंट एक दूसरे से मिले और इब्तेदाई कार्रवाई खत्म होने के बाद तबादला शुरू हो गया जो रात भर जारी रहा।

पागलों को लारियों से निकालना और उनको दूसरे अफसरों के हवाले करना बड़ा कठिन काम था। बाज तो बाहर निकलते ही नहीं थे। जो निकलने पर रजामन्द होते थे, उनको संभालना मुश्किल हो जाता था क्योंकि इधर-उधर भाग उठते थे। जो नंगे थे उनको कपड़े पहनाये जाते, तो वो फाड़कर अपने तन से जुदा कर देते क़ोई गालियां बक रहा है, कोई गा रहा है। आपस में लड़-झगड़ रहे हैं, रो रहे हैं, बक रहे हैं। कान पड़ी आवाज सुनायी नही देती थी-- पागल औरतों का शेरोगोगा अलग था और सर्दी इतने कड़ाके की थी कि दांत बज रहे थे।

पागलों की अकसरियत इस तबादले के हक में नहीं थी। इसलिए कि उनकी समझ में आता था कि उन्हें अपनी जगह से उखाड़कर कहां फेंका जा रहा है। चन्द जो कुछ सोच रहे थे-- 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। दो-तीन मरतबा फसाद होते-होते बचा, क्योंकि बाज मुसलमान और सिखों को ये नारे सुनकर तैश आ गया।

जब बिशन सिंह की बारी आयी ओर वाहगा के उस पार मुतअल्लका अफसर उसका नाम रजिस्टर में दर्ज करने लगा तो उसने पूछा-- टोबा टेकसिंह कहां है? पाकिस्तान में या हिन्दुस्तान में? -मुतअल्लका अफसर हंसा--पाकिस्तान में।

यह सुनकर विशनसिंह उछलकर एक तरफ हटा और दौड़कर अपने बाकी मांदा साथियों के पास पहुंच गया। पाकिस्तानी सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया और दूसरी तरफ ले जाने लगे। मगर उसने चलने से इन्कार कर दिया, और जोर-जोर से चिल्लाने लगा--टोबा टेकसिंह कहां है ओपड़ी गुड़गुड़ दी एन्क्स दी बेध्याना विमन्ग दी वाल आफ दी टोबा टेकसिंह एन्ड पाकिस्तान।

उसे बहुत समझाया गया कि देखों अब टोबा टेकसिंह हिन्दुस्तान में चला गया है। अगर नहीं गया तो उसे फौरन वहां भेज दिया जायगा। मगर वो न माना। जब उसको जबरदस्ती दूसरी तरफ ले जाने की कोशिश की गयी तो वह दरम्यान में एक जगह इस अन्दाज में अपनी सूजी हुई टांगों पर खड़ा हो गया जैसे अब उसे वहां से कोई ताकत नहीं हटा सकेगी।

आदमी चूंकि बेजरर था इसलिए उससे मजीद जबरदस्ती न की गयी। उसको वहीं खड़ा रहने दिया गया और बाकी काम होता रहा। सूरज निकलने से पहले साकित व साकिन (शान्त) बिशनसिंह हलक से एक फलक शगाफ (आसमान को फाड़ देने वाली) चीख निकली -- इधर-उधर से कई अफसर दौड़ आये और देखा कि वो आदमी जो पन्द्रह बरस तक दिन-रात अपनी टांगों पर खड़ा रहा, औंधे मुंह लेटा था। उधर खारदार तारों के पीछे हिन्दुस्तान था-- इधर वैसे ही तारों के पीछे पाकिस्तान। दरमियान में जमीन के इस टुकड़े पर, जिसका कोई नाम नहीं था, टोबा टेकसिंह पड़ा था।

ठंडा गोश्त

ईशरसिंह ज्यों ही होटल के कमरे में दांखिला हुआ, कुलवन्त कौर पलंग पर से उठी। अपनी तेज-तेज आँखों से उसकी तरफ घूरकर देखा और दरवाजे की चिटखनी बन्द कर दी। रात के बारह बज चुके थे। शहर का वातावरण एक अजीब रहस्यमयी खामोशी में गर्क था।

कुलवन्त कौर पलंग पर आलथी-पालथी मारकर बैठ गयी। ईशरसिंह, जो शायद अपने समस्यापूर्ण विचारों के उलझे हुए धागे खोल रहा था, हाथ में किरपान लेकर उस कोने में खड़ा था। कुछ क्षण इसी तरह खामोशी में बीत गये। कुलवन्त कौर को थोड़ी देर के बाद अपना आसन पसन्द न आया और दोनों टाँगें पलंग के नीचे लटकाकर उन्हें हिलाने लगी। ईशरसिंह फिर भी कुछ न बोला।

कुलवन्त कौर भरे-भरे हाथ-पैरों वाली औरत थी। चौड़े-चकले कूल्हे थुल-थुल करने वाले गोश्त से भरपूर। कुछ बहुत ही ज्यादा ऊपर को उठा हुआ सीना, तेज आँखें, ऊपरी होंठ पर सुरमई गुबार, ठोड़ी की बनावट से पता चलता था कि बड़े धड़ल्ले की औरत है।

ईशरसिंह सिर नीचा किये एक कोने में चुपचाप खड़ा था। सिर पर उसके कसकर बाँधी हुई पगड़ी ढीली हो रही थी। उसने हाथ में जो किरपान थामी हुई थी, उसमें थोड़ी-थोड़ी कम्पन थी, उसके आकार-प्रकार और डील-डौल से पता चलता था कि वह कुलवन्त कौर जैसी औरत के लिए सबसे उपयुक्त मर्द है।

कुछ क्षण जब इसी तरह खामोशी में बीत गये तो कुलवन्त कौर छलक पड़ी, लेकिन तेज-तेज आँखों को नचाकर वह सिर्फ इस कदर कह सकी–"ईशरसियाँ!"

ईशरसिंह ने गर्दन उठाकर कुलवन्त कौर की तरफ देखा, मगर उसकी निगाहों की गोलियों की ताब न लाकर मुँह दूसरी तरफ मोड़ लिया।

कुलवन्त कौर चिल्लायी–"ईशरसिंह!" लेकिन फौरन ही आवांज भींच ली, पलंग पर से उठकर उसकी तरफ होती हुई बोली–"कहाँ गायब रहे तुम इतने दिन?"

ईशरसिंह ने खुश्क होठों पर जबान फेरी, "मुझे मालूम नहीं।"

कुलवन्त कौर भन्ना गयी, "यह भी कोई माइयावाँ जवाब है!"

ईशरसिंह ने किरपान एक तरफ फेंक दी और पलंग पर लेट गया। ऐसा मालूम होता था, वह कई दिनों का बीमार है। कुलवन्त कौर ने पलंग की तरफ देखा, जो अब ईशरसिंह से लबालब भरा था और उसके दिल में हमदर्दी की भावना पैदा हो गयी। चुनांचे उसके माथे पर हाथ रखकर उसने बड़े प्यार से पूछा–"जानी, क्या हुआ तुम्हें?"

ईशरसिंह छत की तरफ देख रहा था। उससे निगाहें हटाकर उसने कुलवन्त कौर ने परिचित चेहरे की टटोलना शुरू किया–"कुलवन्त।"

आवांज में दर्द था। कुलवन्त कौर सारी-की-सारी सिमटकर अपने ऊपरी होंठ में आ गयी, "हाँ, जानी।" कहकर वह उसको दाँतों से काटने लगी।

ईशरसिंह ने पगड़ी उतार दी। कुलवन्त कौर की तरफ सहारा लेनेवाली निगाहों से देखा। उसके गोश्त भरे कुल्हे पर जोर से थप्पा मारा और सिर को झटका देकर अपने-आपसे कहा, "इस कुड़ी दा दिमांग ही खराब है।'

झटके देने से उसके केश खुल गये। कुलवन्त अँगुलियों से उनमें कंघी करने लगी। ऐसा करते हुए उसने बड़े प्यार से पूछा, "ईशरसियाँ, कहाँ रहे तुम इतने दिन?"

"बुरे की मां के घर।" ईशरसिंह ने कुलवन्त कौर को घूरकर देखा और फौरन दोनों हाथों से उसके उभरे हुए सीने को मसलने लगा–"कसम वाहे गुरु की, बड़ी जानदार औरत हो!"

कुलवन्त कौर ने एक अदा के साथ ईशरसिंह के हाथ एक तरफ झटक दिये और पूछा, "तुम्हें मेरी कसम,बताओ कहाँ रहे?–शहर गये थे?"

ईशरसिंह ने एक ही लपेट में अपने बालों का जूड़ा बनाते हुए जवाब दिया, "नहीं।"

कुलवन्त कौर चिढ़ गयी, "नहीं, तुम जरूर शहर गये थे–और तुमने बहुत-सा रुपया लूटा है, जो मुझसे छुपा रहे हो।"

"वह अपने बाप का तुख्म न हो, जो तुमसे झूठ बोले।"

कुलवन्त कौर थोड़ी देर के लिए खामोश हो गयी, लेकिन फौरन ही भड़क उठी, "लेकिन मेरी समझ में नहीं आता उस रात तुम्हें हुआ क्या?–अच्छे-भले मेरे साथ लेटे थे। मुझे तुमने वे तमाम गहने पहना रखे थे, जो तुम शहर से लूटकर लाए थे। मेरी पप्पियाँ ले रहे थे। पर जाने एकदम तुम्हें क्या हुआ, उठे और कपड़े पहनकर बाहर निकल गये।"

ईशरसिंह का रंग जर्द हो गया। कुलवन्त ने यह तबदीली देखते ही कहा, "देखा, कैसे रंग पीला पड़ गया ईशरसियाँ, कसम वाहे गुरु की, जरूर कुछ दाल में काला है।"

"तेरी जान कसम, कुछ भी नहीं!"

ईशरसिंह की आवांज बेजान थी। कुलवन्ता कौर का शुबहा और ज्यादा मजबूत हो गया। ऊपरी होंठ भींचकर उसने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा, "ईशरसियाँ, क्या बात है, तुम वह नहीं हो, जो आज से आठ रोज पहले थे।"

ईशरसिंह एकदम उठ बैठा, जैसे किसी ने उस पर हमला किया था। कुलवन्त कौर को अपने मजबूत बाजुओं में समेटकर उसने पूरी ताकत के साथ झझोड़ना शुरू कर दिया, "जानी, मैं वहीं हूं–घुट-घुट कर पा जफ्फियाँ,तेरी निकले हड्डाँ दी गर्मी।"

कुलवन्त कौर ने कोई बाधा न दी, लेकिन वह शिकायत करती रही, "तुम्हें उस रात €या हो गया था?"

"बुरे की मां का वह हो गया था!"

"बताओगे नहीं?"

"कोई बात हो तो बताऊँ।"

"मुझे अपने हाथों से जलाओ, अगर झूठ बोलो।"

ईशरसिंह ने अपने बाजू उसकी गर्दन में डाल दिये और होंठ उसके होंठ पर गड़ा दिए। मूँछों के बाल कुलवन्त कौर के नथूनों में घुसे, तो उसे छींक आ गयी। ईशरसिंह ने अपनी सरदी उतार दी और कुलवन्त कौर को वासनामयी नंजरों से देखकर कहा, "आओ जानी, एक बाजी ताश की हो जाए।"

कुलवन्त कौर के ऊपरी होंठ पर पसीने की नन्ही-नन्ही बूंदें फूट आयीं। एक अदा के साथ उसने अपनी आँखों की पुतलियाँ घुमायीं और कहा, "चल, दफा हो।"

ईशरसिंह ने उसके भरे हुए कूल्हे पर जोर से चुटकी भरी। कुलवन्त कौर तड़पकर एक तरफ हट गयी, "न कर ईशरसियाँ, मेरे दर्द होता है!"

ईशरसिंह ने आगे बढ़कर कुलवन्त कौर की ऊपरी होंठ अपने दाँतों तले दबा लिया और कचकचाने लगा। कुलवन्त कौर बिलकुल पिघल गयी। ईशरसिंह ने अपना कुर्ता उतारकर फेंक दिया और कहा, "तो फिर हो जाए तुरप चाल।"

कुलवन्त कौर का ऊपरी होंठ कँपकँपाने लगा। ईशरसिंह ने दोनों हाथों से कुलवन्त कौर की कमींज का बेरा पकड़ा और जिस तरह बकरे की खाल उतारते हैं, उसी तरह उसको उतारकर एक तरफ रख दिया। फिर उसने घूरकर उसके नंगे बदन को देखा और जोर से उसके बाजू पर चुटकी भरते हुए कहा–"कुलवन्त, कसम वाहे गुरु की! बड़ी करारी औरत हो तुम।"

कुलवन्त कौर अपने बाजू पर उभरते हुए धŹबे को देखने लगी। "बड़ा जालिम है तू ईशरसियाँ।'

ईशरसिंह अपनी घनी काली मूँछों में मुस्काया, "होने दे आज जालिम।" और यह कहकर उसने और जुल्म ढाने शुरू किये। कुलवन्त कौन का ऊपरी होंठ दाँतों तले किचकिचाया, कान की लवों को काटा, उभरे हुए सीने को भँभोडा, भरे हुए कूल्हों पर आवांज पैदा करने वाले चाँटे मारे, गालों के मुंह भर-भरकर बोसे लिये, चूस-चूसकर उसका सीना थूकों से लथेड़ दिया। कुलवन्त कौर तेंज आँच पर चढ़ी हुई हांड़ी की तरह उबलने लगी। लेकिन ईशरसिंह उन तमाम हीलों के बावजूद खुद में हरकत पैदा न कर सका। जितने गुर और जितने दाँव उसे याद थे, सबके-सब उसने पिट जाने वाले पहलवान की तरह इस्तेमाल कर दिये, परन्तु कोई कारगर न हुआ। कुलवन्त कौर के सारे बदन के तार तनकर खुद-ब-खुद बज रहे थे, गैरजरूरी छेड़-छाड़ से तंग आकर कहा, "ईश्वरसियाँ, काफी फेंट चुका है, अब पत्ता फेंक !"

यह सुनते ही ईशरसिंह के हाथ से जैसे ताश की सारी गड्डी नीचे फिसल गयी। हाँफता हुआ वह कुलवन्त के पहलू में लेट गया और उसके माथे पर सर्द पसीने के लेप होने लगे।

कुलवन्त कौर ने उसे गरमाने की बहुत कोशिश की, मगर नाकाम रही। अब तक सब कुछ मुंह से कहे बगैर होता रहा था, लेकिन जब कुलवन्त कौर के क्रियापेक्षी अंगों को सख्त

निराशा हुई तो वह झल्लाकर पलंग से उतर गयी। सामने खूँटी पर चादर पड़ी थी, उसे उतारकर उसने जल्दी-जल्दी ओढ़कर और नथुने फुलाकर बिफरे हुए लहजे में कहा, "ईशरसियाँ, वह कौन हरामजादी है, जिसके पास तू इतने दिन रहकर आया है और जिसने तुझे निचोड़ डाला है?"

कुलवन्त कौर गुस्से से उबलने लगी, "मैं पूछती हूं, कौन है वह चड्डो–है वह उल्फती, कौन है वह चोर-पत्ता?"

ईशरसिंह ने थके हुए लहजे में कहा, "कोई भी नहीं कुलवन्त, कोई भी नहीं।"

कुलवन्त कौर ने अपने उभरे हुए कूल्हों पर हाथ रखकर एक दृढ़ता के साथ कहा–"ईशरसियाँ! मैं आज झूठ-सच जानकर रहूँगी–खा वाहे गुरु जी की कसम–इसकी तह में कोई औरत नहीं?'

ईशरसिंह ने कुछ कहना चाहा, मगर कुलवन्त कौर ने इसकी इजाजत न दी,

"कसम खाने से पहले सोच ले कि मैं भी सरदार निहालसिंह की बेटी हूं तक्का-बोटी कर दूँगी अगर तूने झूठ बोला–ले, अब खा वाहे गुरु जी की कसम–इसकी तह में कोई औरत नहीं?"

ईशरसिंह ने बड़े दु:ख के साथ हाँ में सिर हिलाया। कुलवन्त कौर बिलकुल दीवानी हो गयी। लपककर कोने में से किरपान उठायी। म्यान को केले के छिलके की तरह उतारकर एक तरफ फेंका और ईशरसिंह पर वार कर दिया।

आन-की-आन में लहू के फव्वारे छूट पड़े। कुलवन्त कौर को इससे भी तसल्ली न हुई तो उसने वहशी बिल्लियों की तरह ईशरसिंह के केश नोचने शुरू कर दिये। साथ-ही-साथ वह अपनी नामालूम सौत को मोटी-मोटी गालियाँ देती रही। ईशरसिंह ने थोड़ी देर बाद दुबली आवांज में विनती की, "जाने दे अब कुलवन्त, जाने दे।"

आवांज में बला का दर्द था। कुलवन्त कौर पीछे हट गयी।

खून ईशरसिंह के गले में उड़-उड़ कर उसकी मूँछों पर गिर रहा था। उसने अपने काँपते होंठ खोले और कुलवन्त कौर की तरफ शुक्रियों और शिकायतों की मिली-जुली निगाहों से देखा।

"मेरी जान, तुमने बहुत जल्दी की–लेकिन जो हुआ, ठीक है।"

कुलवन्त कौर कीर ईष्या फिर भड़की, "मगर वह कौन है, तेरी मां?"

लहू ईशरसिंह की जबान तक पहुँच गया। जब उसने उसका स्वाद चखा तो उसके बदले में झुरझुरी-सी दौड़ गयी।

"और मैं।।। और मैं भेनी या छ: आदमियों को कत्ल कर चुका हूं–इसी किरपान से।"

कुलवन्त कौर के दिमाग में दूसरी औरत थी–"मैं पूछती हूं कौन है वह हरामजादी?"

ईशरसिंह की आँखें धुँधला रही थीं। एक हल्की-सी चमक उनमें पैदा हुई और उसने कुलवन्त कौर से कहा, "गाली न दे उस भड़वी को।"

कुलवन्त कौर चिल्लायी, "मैं पूछती हूं, वह कौन?"

ईशरसिंह के गले में आवांज रुँध गयी–"बताता हूं," कहकर उसने अपनी गर्दन पर हाथ फेरा और उस पर अपनी जीता-जीता खून देखकर मुस्कराया, "इनसान माइयाँ भी एक अजीब चीज है।"

कुलवन्त कौर उसके जवाब का इन्तजार कर रही थी, "ईशरसिंह, तू मतलब की बात कर।"

ईशरसिंह की मुस्कराहट उसकी लहू भरी मूँछों में और ज्यादा फैल गयी, "मतलब ही की बात कर रहा हूं–गला चिरा हुआ है माइयाँ मेरा–अब धीरे-धीरे ही सारी बात बताऊँगा।"

और जब वह बताने लगा तो उसके माथे पर ठंडे पसीने के लेप होने लगे, "कुलवन्त ! मेरी जान–मैं तुम्हें नहीं बता सकता, मेरे साथ क्या हुआ?–इनसान कुड़िया भी एक अजीब चीज है–शहर में लूट मची तो सबकी तरह मैंने भी इसमें हिस्सा लिया–गहने-पाते और रुपये-पैसे जो भी हाथ लगे, वे मैंने तुम्हें दे दिये–लेकिन एक बात तुम्हें न बतायी?"

ईशरसिंह ने घाव में दर्द महसूस किया और कराहने लगा। कुलवन्त कौन ने उसकी तरफ तवज्जह न दी और बड़ी बेरहमी से पूछा, "कौन-सी बात?" ईशरसिंह ने मूँछों पर जमे हुए जरिए उड़ाते हुए कहा, "जिस मकान पर।।। मैंने धावा बोला था।।। उसमें सात।।। उसमें सात आदमी थे–छ: मैंने कत्ल कर दिये।।। इसी किरपान से,जिससे तूने मुझे।।। छोड़ इसे।।। सुन।।। एक लड़की थी, बहुत ही सुन्दर, उसको उठाकर मैं अपने साथ ले आया।"

कुलवन्त कौर खामोश सुनती रही। ईशरसिंह ने एक बार फिर फूँक मारकर मूँछों पर से लहू उड़ाया–कुलवन्ती जानी, मैं तुमसे क्या कहूँ, कितनी सुन्दर थी–मैं उसे भी मार डालता, पर मैंने कहा, "नहीं ईशरसियाँ, कुलवन्त कौर ते हर रोज मजे लेता है, यह मेवा भी चखकर देख!"

कुलवन्त कौर ने सिर्फ इस कदर कहा, "हूं।"

"और मैं उसे कन्धे पर डालकर चला दिया।।। रास्ते में।।। क़्या कह रहा था मैं।।। हाँ, रास्ते में।।। नहर की पटरी के पास, थूहड़ की झाड़ियों तले मैंने उसे लिटा दिया–पहले सोचा कि फेंटूँ, फिर खयाल आया कि नहीं।।।" यह कहते-कहते ईशरसिंह की जबान सूख गयी।

कुलवन्त ने थूक निकलकर हलक तर किया और पूछा, "फिर क्या हुआ?"

ईशरसिंह के हलक से मुश्किल से ये शब्द निकले, "मैंने।।। मैंने पत्ता फेंका।।। लेकिन।।। लेकिन।।।।"

उसकी आवांज डूब गयी।

कुलवन्त कौर ने उसे झिंझोड़ा, "फिर क्या हुआ?"

ईशरसिंह ने अपनी बन्द होती आँखें खोलीं और कुलवन्त कौर के जिस्म की तरफ देखा, जिसकी बोटी-बोटी थिरक रही थी–"वह।।। वह मरी हुई थी।।। लाश थी।।। बिलकुल ठंडा गोश्त।।। जानी, मुझे अपना हाथ दे।।।!"

कुलवन्त कौर ने अपना हाथ ईशरसिंह के हाथ पर रखा जो बर्फ से भी ज्यादा ठंडा था।

कृशन चंदर के कुछ व्याकुल शब्द आवारा मंटो की मौत पर

एक अनोखी घटना घटी है। मंटो मर गया है। यों तो वह एक अरसे से मर रहा था। कभी सुना कि वह पागलखाने में है। कभी सुना कि वह ज्यादा शराब पीने से अस्पताल में पड़ा है। कभी सुना कि उसके यार दोस्तों ने भी उसका साथ छोड़ दिया है। कभी सुना कि वह और उसके बच्चे फाकाकशी कर रहे हैं। बहुत सी बातें सुनी हमेशा बुरी बातें सुनीं, लेकिन विश्वाश नहीं हुआ; क्योंकि इस समय भी उसकी कहानियाँ बराबर छपती रहीं; अच्छी कहनियाँ भी और बुरी कहानियाँ भी; जिन्हें पढ़कर मंटो का मुंह नोचने को जी चाहता था, ऐसी कहानियाँ भी जिन्हें पढ़कर मुहं चूमने को जी चाहता था।।।।।

मगर आज रेडियो पाकिस्तान ने यह ख़बर सुनाई कि मंटो धड़कन बंद हो जाने से चल बसा तो दिल और दिमाग चलते चलते एक क्षण के लिए रुक गए ।।।।।

मेरी आँख में आंसू का एक कतरा भी नहीं है, मंटो को रुलाने से अत्यन्त घृणा थी। आज मैं उसकी याद में आंसू बहाकर उसे परेशान नहीं करूँगा। आहिस्ते से अपना कोट पहन लेता हूँ और घर से बाहर निकल जाता हूँ।

सब जगह उसी तरह काम हो रहा है। आल इंडिया रेडियो भी खुला है और होटल का बार भी और उर्दू बाजार भी; क्योंकि मंटो एक बहुत मामूली आदमी था। वह एक गरीब कहानीकार था, वह कोई मंत्री नहीं था जो उसकी शान में झंडे झुका दिए जाते। आल इंडिया रेडियो भी खुला है; जिसने कि सैकड़ों बार उसकी कहानियों के ध्वनि नाट्य रूपांतरण किये हैं, उर्दू बाजार भी खुला है, जिसने उसकी हजारों किताबें बेचीं हैं और आज भी बेच रहे हैं। आज मैं उन लोगों कहकहा लगाकर देख रहा हूँ, जिन्होंने मंटो से हजारों रुपये की शराब पी है।।।

लोगों ने गोर्की के लिए अजायब घर बनाये, मूर्तियाँ बनाईं, शहर बनाये और हमने मंटो पर मुक़दमे चलाये, उसे भूखा मारा, उसे पागल खाने पहुँचाया, उसे अस्पतालों में सड़ाया और यहाँ तक मजबूर कर दिया कि वह किसी इंसान को नहीं शराब की बोतल को अपना दोस्त समझने को मजबूर हो जाये। हम इंसानों के नहीं मकबरों के पुजारी हैं। दिल्ली में मिर्जा गालिब की फिल्म चल रही है, इस फिल्म की कहानी इसी दिल्ली के मोरी गेट में बैठ कर मंटो ने लिखी थी ।।। मंटो दुबारा पैदा नहीं होगा यह मैं भी जानता हूँ और राजेन्द्र सिंह बेदी भी, अस्मत चुगताई भी, ख्वाजा अहमद अब्बास भी और उपेन्द्रनाथ अश्क भी।

मंटो : एक ज़ियारत

प्रेमचंद गांधी

मंटो जैसे लेखक को मैंने कैसे पढ़ा, इसका एक खाका कैफ़ी आज़मी ने अपने एक संस्मरण में जो लिखा है, उससे मिलता-जुलता है। उर्दू में 'अंगारे' का आग़ाज एक बहुत बड़ी घटना रही। लखनऊ में 'अंगारे' के एक सामूहिक पाठ का ज़िक्र करते हुए कैफ़ी आज़मी ने लिखा है कि एक बंद कमरे में मौलाना किस्म के कुछ लोग और उनके दोस्त एक किताब पढ़ रहे थे और हम जैसे छात्र खिड़की-दरवाजों की दरारों से देखा करते थे कि वे कौनसे रहस्यमयी काम को अंजाम दे रहे थे। यह भेद तो खैर बाद में खुला कि वे सब 'अंगारे' पढ़ रहे थे। मैंने भी मंटो को शुरुआत में ऐसे ही एक छोटी-सी दुछत्ती में इतनी चोरी-चकारी के साथ पढ़ा था कि आज शेल्फ़ में 'दस्तावेज़ : मंटो' के पांच खंड़ उन बेवकूफियों पर मुस्कुराते नज़र आते हैं। हतक, ठंडा गोश्त, काली सलवार और खोल दो, जैसी कहानियों के साथ मंटो का मुकदमा जैसी किताबें शायद सोलह बरस की उम्र में बिगाड़ने के लिए काफ़ी थी। इस तरह मंटो से पहली सनसनीखेज और चोर-मुलाकातें हुईं। मुझे यह मालूम नहीं था कि मंटो मेरे जन्म से 12 बरस पहले ही दुनिया से कूच कर गया था और वो भी उस लाहौर में जिसे मेरे दादा मरहूम मंटो के जीते-जी 1946 में बंटवारे से पहले ही छोड़ आए थे। जब दादाजी लाहौर से वापस आये तो उन दिनों मंटो बॉम्बे की फिल्मी दुनिया और कहानियों की दुनिया में जद्दोजहद कर रहा था।

बहरहाल, मंटो से मोहब्बत का जो सिलसिला शुरु हुआ वो आज तक कायम है। इसमें एक मोहब्बत का जिक्र और जरूरी लगता है, जिसके बिना मंटो और मेरी मोहब्बत का अफसाना शायद अधूरा रह जाएगा। मेरी एक दोस्त है, जो मंटो को मुझसे ज्यादा मोहब्बत करती है। करीब बीस बरस पहले की बात है यह, जब मेरी उस दोस्त को मुझमें मंटो नज़र आता था। वो अक्सर कहती थी कि तुम्हारी शक्ल मंटो से ना मिलती होती तो तुमसे दोस्ती का सवाल ही नहीं था। मुझे आज तक पता नहीं चला कि कंबख्त मंटो और मेरी शक्ल में ऐसी क्या चीज है जो एक-दूसरे से मिलती है। बाद के दिनों में हम दोनों ने मंटो की बहुत-सी कहानियों पर बातचीत की और इस तरह मंटो हम दोनों के प्रेम या कि दोस्ती के त्रिकोण में मुस्कुराता रहा।

बात दिसंबर, 2005 की है, जब मैंने पहली बार पाकिस्तान की यात्रा की। प्रगतिशील लेखक संघ के संस्थापक सज्जाद ज़हीर की जन्मशती का अवसर था, जिसमें भारत से 25 लेखक-कलाकारों का प्रतिनिधि मंड़ल पाकिस्तान गया था। जाने से पहले जब मैंने अपनी दोस्त को यह बताया तो उसने कहा तुम मंटो के घर और उसकी कब्र पर ज़रूर जाना, वो तुम्हें देखकर वापस जिंदा हो जाएगा। मेरे लिए पाकिस्तान की यात्रा सज्जाद ज़हीर की कर्मस्थली की जियारत करना तो था ही, मंटो की जियारत करना भी था। उस सफ़र में मिला हर किरदार यूं लगता था जैसे मंटो की कहानी से निकलकर आया हो या कि अगर मंटो होता तो इसे कैसे बयान करता।

22 दिसंबर की कड़कड़ाती ठंड़ में जब हम लाहौर पहुंचे तो हमें एक प्रेस कांफ्रेंस से सीधे रेल्वे स्टेशन जाना था, जहां से गाड़ी पकड़कर कराची पहुंचना था। रास्ते में लक्ष्मी चौक आया। अरे यहीं कहीं तो है मंटो का घर। हमारे एक मेज़बान दोस्त ने कहा कि वापसी में आप मंटो के घर जा सकते हैं। लाहौर स्टेशन पर भारतीय रेल की तरह देरी से चल रही पाकिस्तानी रेल का जब हम इंतजार कर रहे थे, तो मुझे लगा मंटो वहीं प्लेटफॉर्म पर ठहाके लगा रहा है कि सालों तुमने वतन बांट कर क्या हासिल किया...। इधर भी देर है, उधर भी देर है, दोनों तरफ़ एक-सा अंधेर है। अल्लाह के नाम पर भीख मांगते लोगों को देखा तो लगा कि मंटो इनके पीछे चल रहा है, किरदार की तलाश में। लंबे इंतज़ार के बाद जब रेल आई तो मंटो हमारे साथ ही सवार था बेटिकट...। मुझे पूरे सफ़र के दौरान लगता रहा कि मंटो हमारे साथ चलते हुए जैसे किसी बड़े नाविल की तैयारी कर रहा है। कंबख्त चुपचाप लिखे जा रहा था और हमारी वोदका में से पिये जा रहा था। उसकी ख़ामोश मौजूदगी ने उस एसी कंपार्टमेंट में वो दरियादिली पैदा कर दी थी कि सुबह होने तक पाकिस्तानी मुसाफिरों के कटोरदान हिंदुस्तानी मुसाफिरों के लिए खुल गये थे। और मंटो नदारद था। सिंध में सुबह हुई तो दरिया-ए-सिंध से आती सदाओं ने पैग़ाम दिया कि मंटो लाहौर में ही कहीं उतर गया था। उसे शायद बहुत चढ़ गई थी। वो वापस लाहौर के कब्रिस्तान में अपनी कब्र में सोने चला गया था।

कराची से मोहंजोदड़ो, लरकाना और लाहौर वापस आने तक मंटो की याद बराबर बनी रही। उसके किरदार जैसे कहीं पीछा नहीं छोड़ रहे थे। पहले दिन जब एक मजलिस के बाद लाहौर दिखाते हुए हमारे दोस्त जब फूड़ स्ट्रीट ले जा रहे थे, तो नजदीक ही टकसाली गेट के पास हीरा मंडी के शाही मोहल्ले की ओर नजरें चली गईं। यह लाहौर का सबसे बदनाम रेड़लाइट इलाका है। फौजिया सईद ने यहां की वेश्याओं पर एक किताब लिखी है और किताब में छपी तस्वीरों से इसकी तुरंत पहचान हो गई। एक गली के नुक्कड़ पर 'हतक' की सुगंधी की याद दिलाता खाज-मारा कुत्ता दिखाई दिया। वहीं मंटो भी घूमता नजर आया। भीड़ में उससे नज़रें नहीं मिलीं, वरना वो किसी नए अफसाने के लिए बुलाता और कहता कि दो देखो कितनी तरक्की कर ली है इस मुल्क ने। अब यहां की रंडियों पर लड़की ने किताब लिख डाली है, लेकिन सुगंधी जैसी औरतें आज भी बदतर हालात में जीने के लिए मजबूर हैं।

इस सफ़र में दोस्तियां इतनी मजबूत हो चुकी थीं कि हमें लगता ही नहीं था कि इस मुल्क में हम परदेसी हैं। इसीलिये बेख़याली में मैंने अपना बैग फूड़ स्ट्रीट के उस रेस्टोरेंट में छोड़ दिया, जहां हमारे मेजबान ने खाना खिलाया था। सुगंधी को याद करता हुआ मैं अपने दोस्तों के साथ शराब पीने चला गया। रात के करीब तीन बजे तक हम पीते रहे और सुबह जब आंख खुली तो याद आया कि पासपोर्ट और तमाम कागजात उसी बैग में रह गये हैं। मंटो मुस्कुरा रहा था, अब मेरे साथ मेरी ही कब्र में आ जाना। मुझे बहुत गुस्सा आ रहा था, लेकिन

क्या कर सकता था। बहुत खोजने पर मालूम हुआ कि एक दोस्त ने बैग सम्हालकर रख लिया है। अब मंटो हंस रहा था, तो तुम मुझसे बिना मिले चले जाओगे।

बैग की अफरातफरी में मैं भूल गया या कि दोस्त भूल गये, मैं मंटो के घर और उसकी कब्र पर नहीं जा सका। जाने से पहले वाली शाम देर रात जब मैं एक नौजवान शायरा से उसकी गुजारिश पर अंग्रेजी में उससे बातचीत कर रहा था, शाहिद जमाल ने बताया कि वे और कुछ दोस्त मंटो के घर और कब्र की जियारत कर आये हैं। बाद में उस खूबसूरत नौजवान शायरा से बात करने का लुत्फ़ ही जैसे ख़त्म हो गया। उसने बड़ी दर्द-भरी एक नज्म सुनाई थी, उसका चेहरा आज भी याद आता है, बिल्कुल शहजादियों जैसा। मंटो वहीं अल हमरा आर्ट सेंटर की सीढियों पर बैठा था और मुझे देख जैसे मुस्कुरा रहा था। ...मारे गये गुलफाम... अंग्रेजी में शहजादी से बात करने का लुत्फ ले रहे हो, लगे रहो, कोई अफसाना बन ही जाएगा... अगर तुम्हारा पासपोर्ट और वीजा नहीं मिलता तो कसम से, तुम मेरी ही कब्र में दफ़न कर दिये जाते... कि दुनिया को एक मंटो ही मंजूर नहीं था, हमशक्ल तो अफसानों में हमेशा मरते ही आये हैं।... मैंने कहा, कल सुबह तुम्हारी कब्र पर आउंगा। वो मुस्कुराते हुए बोला, देखते हैं... यह हिंदुस्तान नहीं है प्यारे... अगर मैं मर नहीं गया होता तो ये मुझे कैद में डाल देते, तसल्ली है कि ये माटी मारे अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते...मैं इनकी दुनिया को इतना बिगाड़ चुका हूं कि ये अब इसे कभी ठीक नहीं कर सकते।

मैंने सुबह बहुत कोशिश की कि कोई दोस्त मुझे एक बार मंटो की कब्र तक जियारत करवा लाए, लेकिन नहीं... मंटो रात बहुत पी चुका था, इसलिए अपनी कब्र में आराम से सो रहा था। शनिवार का दिन था और बॉर्डर शनीचर को जल्दी बंद हो जाती है, जैसे बैंकों का हाफ-डे यहां भी चल रहा था। दस बजे बॉर्डर पहुंचने की जल्दी में हम जैसे-तैसे भागे। जब हम पाकिस्तानी इमिग्रेशन से गुज़र कर भारतीय सीमा की ओर बढ़ रहे थे, नो मैन्स लैंड़ पर मंटो जैसे पागलों की तरह ठहाके मार रहा था। मेरा टोबा टेकसिंह कहां है माटी मारों... मैं बड़े भारी मन से उसे देखता हुआ चुपचाप आगे की ओर जा रहा था। भारतीय सीमा से कुछ कदम पहले मंटो आया और कंधे पर हाथ रखकर बोला, जाओ अगली बार मिलेंगे।...सरहद पर परिंदे बिना किसी रोक-टोक के आ जा रहे थे...चींटियां तक आराम से पैदल सरहद पार कर रही थीं। बस इंसान ही थे, जिन्हें आने-जाने में कानूनी पेचीदगियां थीं।

तो मैं मंटो से मुलाकात किये बिना वापस आ गया। इसका दर्द बहुत सालता रहा। लेकिन डेढ़ बरस बाद ही फिर एक अवसर मिला मंटो से मुलाकात का। पत्तन मुनारा इंटरनेशनल कांफ्रेंस में शिरकत करने जाना था, साथ में जयपुर से पत्रकार ईशमधु तलवार, सुनीता चतुर्वेदी, आनंद अग्रवाल, कवि ओमेंद्र और शायर फारूख़ इंजीनियर थे। दिल्ली से राजकुमार मलिक और कुछ दोस्त थे। इस बार लाहौर के वरिष्ठ पत्रकार साथी इरशाद अमीन ने बुलाया था, जो मूलत: बीकानेर के पास के हैं और पत्तन मुनारा जैसी पुरातात्विक और ऐतिहासिक जगह को लेकर

बहुत संजीदगी से संरक्षण में लगे हुए हैं। पत्तन मुनारा सरस्वती के बहाव क्षेत्र में कालीबंगा के बाद आने वाली महत्वपूर्ण साइट है, जिस पर बहुत कम काम हुआ है। इस दूसरी यात्रा में राजस्थान और सीमावर्ती पाकिस्तान की सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं को जानने की जिज्ञासा थी तो दूसरी ओर मंटो से मुलाकात की भी।

मेरे साथ ईशमधु तलवार और ओमेंद्र की भी मंटो का घर देखने की बेहद इच्छा थी। इरशाद अमीन ने कहा कि कांफ्रेंस से वापसी के बाद जब लाहौर में दो-तीन दिन रहना होगा तो मंटो से मुलाकात होगी। मैंने इस बार मंटो को ना सड़क पर देखा ना अपने साथ किसी सफ़र में। लगता है वो किसी मेंटल हास्पिटल में भर्ती था। पाकिस्तान में जम्हूरियत की बहाली के लिए बड़ी जद्दोजहद चल रही थी। वकीलों के साथ अवाम भी सड़कों पर उतर आई थी। परवेज मुशर्रफ की सरकार बुरी तरह हिली हुई थी। मुझे लगा जागी हुई जनता को देखकर मंटो सच में पगला गया होगा। हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों ही जगह जो भी थोड़ा बहुत संवेदनशील ढंग से सोचने-विचारने वाला इंसान होगा, उसके लिए पागलखाना ही सबसे महफूज जगह मानी जाती है। जब पाकिस्तानी पुलिस कार्टूनिस्ट फीका के कार्टूनों से भड़क जाती है तो मुसलमान होकर शराब पीने के जुर्म में फीका को सलाखों में बंद कर देती है। ममता बनर्जी का बस चले तो वो भी पाकिस्तानी पुलिस वाला आचरण देर-सवेर अपना ही लेंगी।

मंटो मुझे पिछली बार की तरह हर जगह नहीं मिला तो इसका मतलब यह नहीं कि उससे मुलाकात ही नहीं हुई। दरअसल इस बार मंटो अपने किरदारों में मिला। इक्के-तांगे तो खत्म हो ही चुके थे, सो कोचवान और सईसों में वो कहां दिखाई देता। अलबत्ता वो कदम-कदम पर मिलने वाले उन लोगों के किरदार में नुमायां हो रहा था, जो उसकी कलम की तहरीर बनने पर रजामंद थे। ऐसा ही एक किरदार सुलेमान था, जिससे मैं 2005 में पहली बार मिला था। उसके हाथों में खाना पकाने का ग़ज़ब का हुनर है और हम जैसे मंटो के दोस्तों की खातिरदारी में हरवक्त जुटा रहता है। दरमियाना कदकाठी के मस्तमौला सुलेमान को देखकर आप अंदाज भी नहीं लगा सकते कि कलमकारों की सोहबत में वो ख़ुद कितना कलमकार हो चुका है। मंटो सुलेमान पर जरूर एक अफसाना लिखता और उसमें हम जैसे दोस्त किसी अमीरजादे के दोस्तों में बदल जाते और फिर वो उनकी बदतमीजियों का रेजा-रेजा बिखेरता जाता। उसके अफसाने में सुलेमान ज़रूर उसका हीरो होता और ख़ुद अपनी कहानी बयान करता।

नौजवान शायर साहिर में भी मुझे मंटो का एक जबर्दस्त किरदार नज़र आया। दिलफेंक, लेकिन निहायत ही शरीफ़, मस्त इतना कि शराब, स्मैक, सिगरेट और चरस जैसे सारे नशे समान भाव से करता जाए। लाहौर प्रेस क्लब में जब हमारे एक मुस्लिम दोस्त से पाकिस्तानी पत्रकारों ने पूछा कि वहां मुसलमानों के हालात कैसे हैं, तो वह मंटो के किरदार जैसा साहिर उठा और पूछ बैठा कि पहले पाकिस्तान के मुसलमानों के हालात की फ़िक्र कर लो मियां। साहिर जैसे किरदार आज भी पाकिस्तान में अपने मंटो की तलाश कर रहे हैं।

मंटो के किरदार पर किरदार मिलते जा रहे थे, लेकिन वो खुद नदारद था। रहीमयार खां में हमसे मिलने एक बड़ी अम्मी आईं। उनका बेटा उस इंटेलिजेंस टीम में था, जो हमारी सुरक्षा में लगी थी। उनके चेहरे का नूर बता रहा था और उनकी बूढ़ी आंखों से झरते आंसू बता रहे थे कि बंटवारे के वक्त वो कितने बड़े खेत और बाग-बगीचों वाला घर छोड़कर आईं थीं। उनके पास हमारे लिए दुआएं थीं, आशीर्वाद था और स्नेह का कभी ना खत्म होने वाला निर्झर। मंटो अगर पागलखाने में न होता तो उस बूढ़ी अम्मी पर एक जबर्दस्त हिला कर रख देने वाला अफसाना लिखता और सरहद के दोनों तरफ़ के लोगों की जुबानें खामोश कर देता।... रहीमयार खां के रास्ते में मिले वो गांव वाले तो जैसे मंटो ने ही भेजे थे, जो एक पेट्रोल पंप पर हम भारतीयों को देखकर इतने खुश हो गये थे, जैसे उन्होंने कोई खुदाई चीज देख ली हो।... खानपुर में हमें देखने बहुत से बच्चे और नौजवान ही नहीं औरतें भी आईं... उन सबके मन में यह जिज्ञासा थी कि हिंदुस्तान के लोग क्या वाकई मौलवियों और मदरसों की किताबों में बताए गए चोटीधारी जिन्न जैसे होते हैं। उन्हें बहुत अफसोस हुआ होगा कि ना तो हमारे सिरों पर चोटियां थीं और ना ही सींग... न हमने पीले-भगवा कपड़े ही पहन रखे थे। ... मंटो पागलखाने में चुपचाप रो रहा था और उसकी सदा सुनने वाले उसके किरदार बने दुनिया में घूम रहे थे।

आखिरकार हमारा इंतजार खत्म हुआ। भारत आने से पहले वाले दिन एकबारगी हमें मौका मिल ही गया कि हम मंटो के घर होकर आ सकें। हमें पता था कि मंटो तो वहां नहीं मिलेगा। लेकिन उसके घर को देखने की तमन्ना इतनी बेताब थी कि हम सोचते थे कि माल रोड़ के लक्ष्मी चौक पर किसी से भी पूछो, मंटो के घर का रास्ता बता देगा। हमारे साथ कौन था, ठीक से याद नहीं, शायद सुलेमान या कोई और या कि हम छह राजस्थानी ही... हम लोगों से पूछ रहे थे कि किसी ने बताया, इस गली में चले जाइये, आगे मिल जाएगा। बिना मकान नंबर के मकान तलाशने के ऐसे मौके जिंदगी में बहुत कम मिलते हैं और जिसका मकान तलाश रहे हों, वो अगर पचासों बरस पहले ही दुनिया से कूच कर गया हो तो कौन बताएगा, इस उपमहाद्वीप में उसका घर, अगर वो टैगोर ना हो तो... हमारी किस्मत अच्छी थी कि हमें बहुत भटकना नहीं पड़ा और दो-एक जगह पूछने के बाद हम उस घर के दरवाजे पर थे, जिसके बाहर अंग्रेजी और उर्दू में लिखा था, सआदत हसन मंटो, शॉर्ट स्टोरी राइटर (1912-1955)।

काफ़ी देर डोरबेल बजाने के बाद कुछ हरकत हुई और दरवाज़ा खुला, एक नौजवान-से शख्स की शक्ल दिखी, उसे बताया गया कि हम हिंदुस्तान से आए हैं और मंटो साहब का घर देखने आए हैं। उसने कहा कि घर में कोई नहीं हैं, निक़हत आपा बाहर गई हैं... हमने बहुत इसरार किया तो वो शख्स वापस भीतर गया और बड़ी देर बाद लौटा। उसने कहा आइये और हम उसके पीछे-पीछे मंटो के घर में दाखिल हुए जैसे उसके बहुत पुराने दोस्त हों, हमप्याला और हमनिवाला। घर में दाखिल होते ही लगा, मंटो जैसी दुनिया बनाना चाहता था, वो तो तामीर नहीं हुई, लेकिन उसके आखिरी दिनों के घर को सबसे बड़ी बेटी निक़हत ने वैसा जरूर बना

दिया है, मंटो की रूह को कुछ तो चैन मिला होगा शायद। सफ़िया बी की बहुत खूबसूरत तस्वीरें थीं और मंटो की भी। मंटो अपनी आवारगी में भी बला का खूबसूरत लगता होगा, यह उसकी तस्वीरें देखने से अंदाज होता है। लेकिन सफिया से वो बेपनाह मोहब्बत करता था। निक़हत ने किसी इंटरव्यू में बताया है कि अब्बा, अम्मी की साड़ी पर खुद इस्तरी करते थे और फिर बहुत खूबसूरत अंदाज में उनकी तस्वीर लेते थे। सफिया बी की तस्वीरें सच में उस मोहब्बत को बयां करती हैं। उस बैठक में तस्वीरों के अलावा उर्दू और अंग्रेजी में छपी कुछ किताबें थीं मंटो की और पाकिस्तान डाक विभाग का वो शानदार और एकमात्र डाक टिकट भी जो मंटो पर किसी बरस जारी किया गया था। चीनी-मिट्टी के प्यालों में करीने से सजे कई सुंदर रंग-बिरंगे पत्थर और कांच के टुकड़े थे। सफ़ेद परदों और चमकती रोशनी के बीच यह मंटो का घर था, जिसमें वो बैठकर लिखने वाली तख्ती नहीं दिख रही थी, जिसमें सफिया से छुपाकर मंटो अपनी शराब रखता था।

यह घर निक़हत ने कुछ बरस पहले ही ठीक करवाया और उसमें रहने लगीं। मंटो ने यहां बहुत कम दिन गुजारे। पाकिस्तान आने के बाद वो जिंदा ही कितना रहा। बहरहाल, बहुत देर तक जब हम उस बैठक में रहने के बाद जाने लगे तो मालूम हुआ कि मंटो के दामाद और निक़हत के खाविंद पटेल साहब आ रहे हैं। बेहद बुजुर्ग और बीमारी से लाचार निक़हत के पतिदेव गुजरात में जूनागढ़ के रहने वाले हैं। उन्हें बोलने में भी बहुत तकलीफ हो रही थी, उनकी आंखों का कोई ऑपरेशन हाल ही में हुआ था। उनकी आंखों से पानी झर रहा था। उन्हें इस बात पर बहुत तकलीफ हो रही थी कि हिंदुस्तान से चलकर लोग मंटो का घर देखने कई बार आते हैं, लेकिन पाकिस्तान से शायद ही कोई आता है, उनकी जुबान में कहें तो कोई नहीं आता। हमसे उनकी तकलीफ देखी नहीं जा रही थी, उन्होंने हमें चाय-नाश्ते की दावत भी दी, लेकिन हमने मना कर दिया। पटेल साहब को जब मालूम हुआ कि हम राजस्थान से आये हैं तो उन्होंने बताया कि उनकी दो बहनों की शादी कोटा में हुई हैं और वे दोनों वहीं पुराने कोटा शहर में रहती हैं। नौकर ने पानी पिलाया। बुजुर्गवार ने कहा कि निक़हत आ जाएंगी, आप मिलकर जाइयेगा, लेकिन हम उन्हें गर्मी की उस तकरीबन दोपहरी में बहुत परेशान नहीं करना चाहते थे, इसलिए जल्द ही वहां से रुख्सत हो लिये। लौटते हुए बहुत गुस्सा था दिल में कि दोनों मुल्कों में दो कौड़ी के नेताओं के नाम पर मोहल्ले और सड़कें रख दी जाती हैं, लेकिन उस गली का नाम मंटो स्ट्रीट नहीं रखा जाता, उस जगह को गुलशन-ए-मंटो जैसी कॉलोनी नहीं किया जाता। हमने अपने महान कलमकारों के साथ क्या सुलूक किया है...शर्म आती है।

बहुत मन था कि मंटो से मिलने उसकी कब्र तक जाएं, लेकिन पिछली बार की तरह इस बार भी संभव नहीं हुआ। लेकिन सोचता हूं कि नहीं जाने से एक दुख तो कम हुआ... कम से कम मैं मंटो की कब्र पर लिखे उसके अपने कतबे को बदलकर कुछ और करने का तरफ़दार तो

नहीं हो सकता था। हम बरसों से पढ़ते-सुनते आए हैं कि मंटो ने अपनी कब्र के लिए यह कतबा लिखा था,

यहां सआदत हसन मंटो दफ़्न है
उसके सीने में फ़न्ने-अफ़सानानिग़ारी के
सारे असरारो-रूमूज़ दफ़्न हैं
वो अब भी मानो मिट्टी के नीचे सोच रहा है कि
वो बड़ा अफ़सानानिग़ार है या ख़ुदा
सआदत हसन मंटो
18 अगस्त, 1954

बेटी निक़हत के मुताबिक उनकी फूफू ने मंटो के कतबे को बदलवा दिया था। अब लाहौर के मियानी साहब कब्रिस्तान में आपको मंटो की कब्र पर उर्दू में यह कतबा दिखाई देगा,

सआदत हसन मंटो की
कब्र की कब्र है यहां
जो आज भी ये समझता है कि
वो लौहे-जहां पर हर्फे-मुकद्दर नहीं था

मुझे पूरा यकीन है कि मंटो अपने कतबे के साथ इस बदतमीजी से बेहद नाराज़ हुआ होगा और इसीलिये अपनी कब्र से बाहर निकल कहीं गुम हो गया होगा। वो मुझे अब तक नहीं मिला और ना ही मैं उसकी कब्र पर जा सका... मंटो की कब्र पर जाने की मेरी जियारत अधूरी ही रही... पांच बरस पहले की इन बातों को सोचता हूं तो लगता है कि मंटो की जियारत न उसके घर जाने में है और ना ही उसकी कब्र पर... उसकी असली जियारत तो उसके लिखे से गुजरने में ही मुमकिन है।

prempoet@gmail.com

मंटो ने अपनी कब्र के लिए ये कतबा तैयार करवाया था।

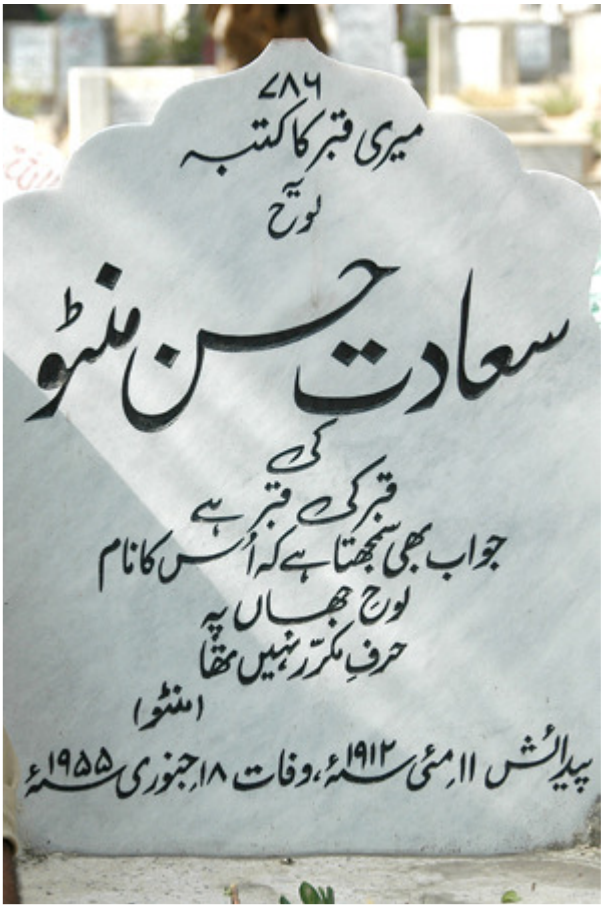

यहां सआदत हसन मंटो दफ़्न है
उसके सीने में फ़न्ने-अफ़सानानिग़ारी के
सारे असरारो-रूमूज़ दफ़्न हैं
वो अब भी मानो मिट्टी के नीचे सोच रहा है कि
वो बड़ा अफ़सानानिग़ार है या ख़ुदा
सआदत हसन मंटो
18 अगस्त, 1954